483
H 100 P

1312
10|21

19-1

177

ख़ून के छींटे

56

'रसिक'

45/35-83

IMPERIAL RECORD DEPARTMENT
RECEIVED.
10 DEC. 1930

साहित्य-मणि-माला का तृतीय रत्न

ख़ून के छींटे

[राजनैतिक कविताओं का अपूर्व दर्शन]

आह ! अमित घायल हैं फिर भी खुले हुए हैं सीने।
चमका दें बलि-वेदी को भी क्यों न अमूल्य नगीने ?
पराधीन होकर भी हैं यदि कर सकते न ग़ुज़ारा।
तो फिर इस जीवन से जीवन-दान क्यों न हो प्यारा ?

लेखक—
बलभद्रप्रसाद गुप्त, विशारद 'रसिक'
शान्ति-सदन, प्रयाग।

प्रथम संस्करण] [मूल्य आठ आना

प्रकाशक—
शिवशङ्करचन्द्र भारतीय,
विद्याराम गुप्त

891.431
G951K

NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
No 483
Date 11:12.71
GOVT. OF INDIA

पुस्तक मिलने का पता—
साहित्य-सदन कार्यालय,
कटरा, प्रयाग।

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मुद्रक—
रामअधार यादव,
यूनियन जाब प्रेस,
कटरा, प्रयाग।

समर्पण

[१]

अपने सूखे सुमनों की; बिखरी सी नीरस माला ।
तुमको पहना देने का; साहस मैंने कर डाला ॥
यद्यपि सौन्दर्य्य-सुधा से; हैं रहित और अति रूखे !
पर तुम प्रसिद्ध हो जग में; भगवान ! भाव के भूखे ॥

[२]

लो मूँद लिया अपने ही; हाथों से अपने लोचन ।
आओ, आगे बढ़ आओ; हे मेरे भव-भय-मोचन ॥
क्यों सकुच रहे हो इतना; बोलो घनश्याम ! हमारे ?
भक्तों से क्या अच्छी है; इतनी निष्ठुरता प्यारे ?

[३]

लज्जा को दूर हटा कर; निज कोमल कंठ झुकाओ ।
उपहार प्यार से ले कर; कुछ भावुकता दरसाओ ॥
अनुरोध यही है इसको; तुम सादर अपना लेना ।
पर याद रहे मन-मोहन ! पीछे ठुकरा मत देना ॥

तुम्हारा :—
'रसिक'

खून के छींटे

लेखनी

[१]

भावों के प्रवाह में बहादे मन-मानस को,
कायरों के चित्त में भी जोश उमगा दे तू।
वीरता का बाना पहिना दे फिर भारत को,
जागृति की ज्योति-चन्द ज्योत्स्ना जगा दे तू॥
चढ़ा दें 'रसिक' प्राण-सुमन समोद हम;—
बलि-वेदी पर, ऐसी लगन लगा दे तू।
भैरवी भयङ्करी कराल कालिका सी फिर,
लेखनी ! सदा के लिये भीरुता भगा दे तू॥

[२]

ऐसी भाव-पूर्ण कवितायें लिख दे तू आज,
जिन्हें पढ़ कर जनता की आँख खुल जाय।
वासना से हो गया है चित्त अपवित्र जो कि,
वीरता की सुधा-धारा द्वारा वह धुल जाय॥

अपना औ अन्य देश के निवासियों का भेद,
तेरी ही 'रसिक' नोक-तुला पर तुल जाय।
विकराल करवाल सी री लेखनी तू चल,
तेरी गति में विशाल बज्र तक घुल जाय॥

[३]

बना दे नृसिंह सर्व भारत-निवासियों को,
उन्नत अचल को भी कर दे चलायमान।
हर ले तू इनके हृदय से द्वेष-कालकूट,
निज बल देकर बना दे इन्हें बलवान॥
भू पर गिरा दें ये गगन और गिरि को भी,
भर दे री लेखनी! तू ऐसी प्रतिभा महान।
जिससे समोद ये चढ़ा दें निज प्राण-पुष्प,
'रसिक' स्वदेश-बलि-वेदी पर बलिदान॥

[४]

परम प्रचण्ड मार्तंड सा बना दे देवि!
इनके शरीर में अपार तेज भर दे।
इनके मुखों को कान्तिमान कर विद्युत सा,
इनके हृदय में शिवा जी का जोश धर दे॥
परतन्त्रता की भावनायें तू मिटा दे शीघ्र,
'रसिक' प्रताप सा प्रतापी इन्हें करदे।
बन कर चण्डी प्रलयङ्करी री लेखनी! तू;
एक बार नीच आततायियों को दर दे॥

[५]

प्राप्त कर तेरी दया-दृष्टि दयाशील बनें,
सानुराग करदें निसार देश पर प्रान।
बन जाँय तेरी शक्ति से महान शक्ति-शाली,
गावें स्वाभिमानी बन कर राष्ट्रीय गान॥
फिर से स्वराज्य की पताका फहरा दे देवि!
अटक से कटक औ कटक से मुलतान।
भावुक 'रसिक' भारतीय हैं ये भक्त सभी,
लेखनी! इन्हें दे तू स्वतन्त्रता का वरदान॥

[६]

मेरी लेखनी में चण्डी! फूँक दे तू ऐसा ओज,
जिससे सिहर उठे इससे कृपाण-धार।
वज्र सी कड़क कर जब यह चल पड़े,
मच जाय विघ्नकारियों में तब हाहाकार॥
नोक से निकाल कर क्रान्ति और उन्माद,
भर दे स्वदेश-प्रेमियों में वीरता अपार।
निज प्रतिभा से दहला दे विश्व-मण्डल को,
कर दे 'रसिक' कालकूट को भी छार छार॥

परिचय

[१]

श्रीकर हो दीनता का दर्प दरता हूँ सदा,
तीक्ष्ण तम-तोम हरने के लिये रवि हूँ।
एकमात्र भारत का पावन पुजारी हूँ मैं,
अग्नि की प्रचण्ड प्रतिभा का दिव्य छवि हूँ॥
शशि-ज्योत्स्ना सी मेरी कान्ति-कौमुदी है मंजु,
राजनीति, छत्र-दण्ड का प्रकाण्ड पवि हूँ।
किसने न विश्व में है मान लिया लोहा मेरा,
शान्त क्रान्तिकारी हूँ मैं 'रसिक' सुकवि हूँ॥

[२]

दिग्गजो ! दिशाओ ! कच्छपो ! फणीन्द्र ! शेष सभी,
काँप क्यों रहे हो जैसे काँपती है कदली ?
त्याग कर केतकी कुसुम को 'रसिक' तुम्हीं,
चम्पा के समीप क्यों पधारते हो ऐ अली ?
अट्टहास करते हो व्यर्थ क्यों घटाओ ! घोर;
भागते फिरोगे मिलेगी न एक भी गली ?
सावधान सूर्य ! शशि ! अग्नि ! वारि ! वायु ! नभ !
मेरी लेखनी ने आज करवट बदली॥

कवि-प्रतिभा

उज्ज्वल धवल धूम्रकेतु नभ-मण्डल से,
टूट टूट कर भूमि पर गिर जायँगे।
झंझा के झकोरों से न दिन का चलेगा पता,
सघन गगन-मध्य घन घहरायँगे॥
जाकर छिपेगी मृत्यु जीवन के अञ्चल में,
समालोचकों के सेनापति थहरायँगे।
वीर-रस-पूर्ण, महाकाव्य लिखने को जब,
सुकवि 'रसिक' निज लेखनी उठायँगे॥

अनुरोध

ऐसा वरदान वरदायक! प्रदान करो,
भारत का फिर से ज़माना ही बदल जाय।
क्रोध से दहाड़ उठे भारतीय सिंह यदि,
विन्ध्याचल चल जाय दिग्गज दहल जाय॥
'रसिक' तुम्हारी दिव्य-दया-दृष्टि-द्वारा फिर,
विघ्न-बर्फ़ गल जाय, दुःख-दल टल जाय।
अघ-अभिलाष अग्नि-ज्वाल ही सा जल जाय,
उन्नति-गगन पर भारत मचल जाय॥

विनय

[१]

क्रान्ति का कराल करवाल चमका दे फिर,
अवनति-निशाचरी का सारा दर्प दर दे।
भारतीय पूर्ण स्वाधिकार फिर प्राप्त करें,
सर पर इनके वरद-हस्त धर दे॥
'रसिक' स्व विघ्नकारियों को नष्ट भ्रष्ट करें,
इनमें अनन्त उत्साह शीघ्र भर दे।
एरी मातु भारत! महान् शक्तिशाली फिर,
एक बार भारत-निवासियों को कर दे॥

[२]

पूर्णतया फिर से समृद्धि सुख-युक्त कर,
दीनता का कण्टक हृदय से कढ़ जाने दे।
रौंद दे पदों से परतन्त्रता पिशाचिनी को,
'रसिक' स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ जाने दे॥
शीघ्र ही स्व दया-दृष्टि-द्वारा एक बार फिर,
उन्नति के मंजु मार्ग पर बढ़ जाने दे।
एरी मातु भारत! स्वदेशवासियों को फिर,
राष्ट्र-बलि-वेदी पर बलि चढ़ जाने दे॥

मतवाला भिक्षुक

[१]

रक्त-धार से सींच रहे हैं स्वतन्त्रता की क्यारी।
आज पूर्णतः धधक रही है विप्लव की चिनगारी॥
नमक बनाकर जग को दिखलाते निज नमकहलाली।
नवजीवन के लिये पिये लेते हैं विष की प्याली॥

[२]

नमक अदा कर रही देश के दीवानों की टोली।
सह कर कोमल वक्षस्थल पर बन्दूकों की गोली॥
वे निज घोर दमन का चाहे जितना चक्र चलायें।
मौत और फाँसी से डरतीं कहीं वीर आत्मायें?

[३]

क्या भारत-भविष्य में छाईं क्रान्तिकारिणी रातें?
सहन करेंगे कबतक निष्ठुर असहनीय आघातें?
महा-शक्ति है, मूल-मन्त्र है, विषम बज्र है खादी।
अब तो इसपर ही निर्भर है भारत की आज़ादी॥

[४]

इस नश्वर जग में होना है बार बार यदि पैदा।
डर कर व्यर्थ मृत्यु से फिर क्यों हो न मुल्क के शैदा?
पता नहीं थोड़े ही दिन में है क्या होने वाला?
अखिल विश्व-सम्राट बनेगा क्या भिक्षुक मतवाला?

महारथी लाला लाजपतराय

[१]

देव ! तुम्हारे भग्न हृदय में थी व्यथितों की आह छिपी।
देव ! तुम्हारे रग रग में थी केवल कसक कराह छिपी॥
देव ! तुम्हारे रोम रोम में था स्वदेश का प्यार छिपा।
बृटिश-राज्य का देव ! तुम्हारे में था उपसंहार छिपा॥

[२]

देव ! तुम्हारे भिक्षुक हाथों में था नीरव त्याग छिपा।
स्वतन्त्रता का देव ! तुम्हारे में था दृढ़ अनुराग छिपा॥
देव ! तुम्हारे वचनों में था महा प्रबल तूफ़ान छिपा।
देव ! तुम्हारी जिह्वा में था अमित आत्म-सम्मान छिपा॥

[३]

देव ! तुम्हारी मंजु मूर्ति में थी यद्यपि शुभ शान्ति छिपी।
किन्तु तुम्हारी नेत्र-लालिमा में थी भीषण क्रान्ति छिपी॥
देव ! तुम्हारे अस्थि-जाल में थे विप्लव के गान छिपे।
कितनों के थे मान छिपे, कितनों के थे अरमान छिपे॥

[४]

देव ! तुम्हारे मस्तक में था भव्य भाव-उन्माद भरा।
देव ! तुम्हारी वाणी में था अट्टहासमय नाद भरा॥
देव ! तुम्हारे अधरों में था वैभव के प्रति शाप भरा।
देव ! तुम्हारी चितवन में था कृषकों का सन्ताप भरा॥

[५]

हाय ! विलोका गया न तुमसे दीनों के प्रति अत्याचार ।
हाय ! न देखा गया कृतघ्नों का तुमसे दूषित व्यवहार ॥
हाय ! विलोका गया न तुमसे जग में अपनों का अपमान ।
न्याय-मूर्ति-मानव कैसे सह सकते हैं अन्याय महान् ?

[६]

स्वयं लाजपत किस प्रकार लज्जा माँ की लुटने देता ?
आँखों के आगे आँखों के तारों को कुटने देता ?
सत्याग्रह का शस्त्र हाथ में लेकर निकल पड़ा रण-वीर ।
सहम गये अत्याचारीगण लख कर उसकी छवि गम्भीर ॥

[७]

उसे देख हथकड़ियों की दृढ़ कड़ियाँ भी कड़ कड़ टूटीं ।
उसे देख पाशविक शक्ति की मदमाती आँखें फूटीं ॥
उसे देख नौकरशाही का भी शाही आतङ्क मिटा ।
उसे देख भारत माँ के अञ्चल का पङ्क कलङ्क मिटा ॥

[८]

क्षण भर में ही देव ! न जाने हुए कहाँ तुम अन्तर्ध्यान ?
अत्याचारों की बलि-वेदी पर तुम हाय ! हुए बलि-दान ॥
मर मिट गये, नहीं—हृदयासन पर तुम देव ! हुए आसीन ।
हम निर्जीवों में फूँका है तुमने जीवन अर्वाचीन ॥

[९]

'रसिक' राष्ट्र की बलि-वेदी पर तुमने अपना जीवन त्याग।
लगा दिया है सब के दिल में कभी न बुझनेवाली आग॥
देव ! तुम्हारी स्मृति लाती है मानस में भीषण भूचाल।
वर्तमान आन्दोलन उसका ही है केवल प्रातःकाल॥

[१०]

रक्त-धार से सिञ्चित होगी स्वच्छन्दता-कुसुम-क्यारी।
धधक उठेगी धीरे धीरे महाप्रलय की चिनगारी॥
देव ! तुम्हारे प्राण-दान से जो प्रज्वलित हुई ज्वाला।
कर दासत्व भस्म पहनावेगी वह क्यों न विजय-माला ?

[११]

जल जावेंगे उसमें पड़कर दीन दरिद्रों के दुख, पाप।
क्यों न करेंगे निज कृत्यों पर अत्याचारी पश्चात्ताप ?
भस्मीभूत न हो जावेगा फिर क्यों पराधीनता-क्लेश ?
क्यों न स्वर्ण सा चमक उठेगा विश्व-तिलक मणि भारत देश ?

———

होली में

कुंकुम अबीर लेशमात्र भी नहीं है पर,
द्रोह, द्वेष, दैन्य है हमारी झीनी झोली में।
विजय मिली ही नहीं विजया कहाँ से छने ?
बुक्के में सफ़ेदी औ न लालिमा है रोली में॥
व्यवसाय भी है हाय ! हाथ में विदेशियों के;
राष्ट्र-शक्ति 'रसिक' छिपी है गन-गोली में।
गाल कैसे लाल बन सकते गुलाल से हैं ?
दासता न भस्म हुई अब तक होली में॥

होली हो

खद्दर का चद्दर हो तन की बढ़ाता छवि;
भाल पर द्युतिपूर्ण विजय की रोली हो।
मुख की 'रसिक' लोल लालिमा विलोक कर,
चकित चतुर चित्रकार की भी टोली हो॥
मनोवृत्ति मातृभूमि पर बलि होने की हो;
यशोगान से अपार गुंजित प्रतोली हो।
क्यों न इसी भाँति परी मातु ! आज भारतीय;
वीर क्रान्तिकारियों के जीवन की होली हो?

होली है

[१]

राष्ट्र की विजय-वैजयन्ती फहरा रही है,
खुल गई भारतीय वीरता की झोली है ॥
क्रान्ति औ स्वतन्त्रता के नारे लग रहे हैं आज,
कर दी गई प्रतापहीन गन-गोली है ॥
रत्तक हैं, प्राण भी 'रसिक' वार देंगे हम,
हट जाओ सामने से यह मातृ-डोली है।
होली हो ली चाहे जैसी अब तक किन्तु अब,
खेलना सुरों से स्वर्ग ही में हमें होली है ॥

[२]

लेकर समोद पिचकारी शुभ सत्यता की,
घोल कर जोश का गुलाल झीनी झोली में।
डूब कर रम्य राष्ट्रीयता की रङ्गत में,
रँग कर भव्य भारतीयता की रोली में ॥
लेकर अबीर स्वाधिकारों का 'रसिक' सौम्य,
गा कर कबीर वीरता की प्रिय बोली में।
पी कर स्वदेश-रुचि-रूप-रस पूर्णतया,
खेल लिया होली वीरों ! खूब बारडोली में ॥

गुलाल की

[१]

हो गये हतोत्साह आह ! सब भाँति से हैं,
रह गई हाय ! बस शक्ति हड़ताल की ।
शेर का शिकार कैसे करें काँपते हैं जब ?
देख कर तीक्ष्ण लाल दृष्टि कोतवाल की ॥
टोली कैसे मस्त मतवालों की दिखाई पड़े ?
'रसिक' स्वतन्त्रता भी है न बोलचाल की ।
दासता का पाप अब तक जला होली में न,
चढ़े कैसे भाल पर लालिमा गुलाल की ?

[२]

दाने दाने को भी हो गये हैं मुँहताज जब,
बात क्या चलावें मोती, लाल, मणिमाल की ?
पैदल भी चलने की आज्ञा नहीं है जब,
बात क्या चलावें हाथी घोड़े सुखपाल की ?
लाठी बाँधने के लिये भी हैं न स्वतन्त्र जब,
बात क्या चलावें तलवार और ढाल की ?
होली नहीं जब सभी भाँति से मुहर्रम है,
बात क्या चलावें तब रोली या गुलाल की ?

[३]

दीन भारतीयों को हैं अन्न के भी लाले पड़े,
हाकिम हैं किन्तु हवा खाते नैनीताल की।
लुट जायँगे ये मोती, लाल औ जवाहर भी,
यदि हमने न भली भाँति देख-भाल की॥
किस न्यायाधीश से 'रसिक' फ़र्याद करें ?
किसको सुनावें निज कविता मसाल की ?
गालों पर किसी भाँति से भी चढ़ती है नहीं,
लाली लेशमात्र आज रोली या गुलाल की॥

[४]

करते विहार राजहंस थे जहाँ सदैव,
सुन पड़ती हैं वहीं बोलियाँ शृगाल की।
चलता सबों ही पर काल का कराल चक्र,
किन्तु तुलना न मिली कहीं इस चाल की॥
'फूट-भेद-नीति' जानते हैं लड़ते हैं तो भी,
यह अवनति भी है कितने कमाल की ?
हो गये हैं गाल दोनों लज्जा से ही लाल लाल,
आई इन पर नहीं लालिमा गुलाल की॥

[५]

मोती चुनते हैं मानसर में उलूक, बक,
हीन हो गई है हाय हालत मराल की।

डस लिया फिर भी ज़हर है उगल रही,
कैसी है कठोर फ़ुफ़कार इस व्याल की ॥
आत्म-बलिदान बिना टूट सकती है नहीं,
बेड़ी पड़ी कठिन है दासता के जाल की ।
हो गये हैं नेत्र लाल, ख़ून है उतर आया,
आई इनमें न लेश लालिमा गुलाल की ॥

[६]

मतवालापन वही फिर दिखलाई देगा,
'रसिक' सुनेंगे वही ध्वनि करताल की ।
झोली खुल जायगी अबीर और कुंकुम की,
धूम मच जायगी कबीर के जमाल की ॥
पाप, दुराचार, अत्याचार भस्मीभूत होंगे,
उपमा मिलेगी न विशाल इक़बाल की ।
होली स्वच्छन्दता की होगी पार साल तब,
गाल पर शोभा देगी लालिमा गुलाल की ॥

पतन

ऐसी हो गई है हाय ! हालत हमारी हाय,
.ज़ुल्म हुआ आज राष्ट्रीय गान गाना भी।
हो गई पतन की परम पराकाष्ठा है,
.ज़ुल्म हुआ आज निज वेदना सुनाना भी॥
'रसिक' समस्त विश्व को थे जो खिलाते रहे,
.ज़ुल्म हुआ आज उन्हें रूखा सूखा खाना भी।
किया था विकाश जिन लोगों ने ही सभ्यता का,
.ज़ुल्म हुआ उन्हें आज नमक बनाना भी॥

भारत-निवासी

जीवन सफल भारतीयों का ही सदा से है,
इनके समान जग में न सदाचारी हैं।
दीन दुखियों का दुःख दूर करने को नित्य,
दृढ़ता औ सत्य की ये रखते कटारी हैं॥
देश-बलि-वेदी पर प्राण-पुष्प चढ़ा देते,
'रसिक' समोद ऐसे वीर-व्रतधारी हैं।
प्रेम के प्रकाशक हैं, भ्रान्ति के विनाशक हैं,
शान्ति के उपासक हैं, क्रान्ति के पुजारी हैं॥

क्रान्ति

क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल।
बड़े बड़े साम्राज्यों को यह करती डाँवाडोल ॥

उन्नति का प्रिय पाठ पढ़ाती।
स्वच्छन्दता-सुमन सरसाती ॥
गर्वीलों का गर्व गिराती।
मुर्दों में नव जीवन लाती ॥
विप्लव-द्वारा विष में भी यह अमृत देती घोल ॥
क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल ॥

[२]

इसका सदा बोल है बाला।
यह फैला देती नव ज्वाला ॥
जाने पिला कौन सा प्याला।
है यह कर देती मतवाला ॥
पराधीन राष्ट्रों में है यह ला देती भूडोल ॥
क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल ॥

[३]

अत्याचार न सहने देती।
शान्त न क्षण भर रहने देती ॥

नहीं हृदय में दहने देती।
कातर शब्द न कहने देती॥
बारम्बार राज-सत्ता की स्वयं खोलती पोल॥
क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल॥

[३]

दीन दरिद्रों का दुख हरती।
ध्यान स्वाधिकारों का धरती॥
पल में ही पागल सा करती।
रक्त महा-सागर दल तरती॥
साम्यवाद या दृढ़ स्वराज्य के सदा बोलती बोल॥
क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल॥

[४]

रिपुओं के बम बरसाने पर।
घृणित भावना दरसाने पर॥
प्रतिहिंसा मन में आने पर।
सहन-शक्ति के थक जाने पर॥
रण-चण्डी सी 'रसिक' बजाने लगती है रण-ढोल॥
क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल॥

[५]

देवि! तुझे आ हम अपनावें।
तेरा गौरव गायन गावें॥

तुझ पर प्राण-प्रसून चढ़ावें ।
तेरी पावन प्यास बुझावें ॥
तेरे लिये दिया है हमने निज वक्षस्थल खोल ॥
क्रान्ति है एक शक्ति अनमोल ॥

आहों की चिनगारी

[१]

अत्याचारी ! कर तू चाहे सर को तन से हीन ।
किन्तु आत्मा कभी न होगी तेरे सन्मुख दीन ॥
हाथों में भर दे तू चाहे फ़ौलादी हथकड़ियाँ ।
पर न व्यक्त होंगी आँखों में अश्रु-विन्दु की लड़ियाँ ॥

[२]

'रसिक' समोद पान कर लूँगा विषम गरल का प्याला ।
दग्ध तुझे ही किन्तु करेगी जागृत-जीवन ज्वाला ॥
मुझे मारने से पहले तू करले खूब विचार ।
मेरी आहों की चिनगारी से होगा तू छार ॥

मन में

आज भारतीयों को हैं भोजन के लाले पड़े,
आकर अटक रहे प्राण अन्न-कन में।
मिल जातीं उन्हें सारी खोई निधियाँ हैं मानो,
देख कर घिरे हुए बादल गगन में॥
पर जानती है भारतीय सरकार यह,
राज-शक्ति बढ़ती है प्रजा के निधन में।
डाल कर फूट पीछे लूट है मचाती वह,
निज कूट-नीति-द्वारा इसी दमन में।

अमर

लोभ का न क्षोभ जिसको है हुआ जीवन में,
बजता नगाड़ा नित्य जिसके ही दम का।
काम पड़ता है जिसको न छलियों से कभी,
हृदय में जिसके न अंश भी है भ्रम का॥
दीन दुखिया न कभी जिससे सताये जाते,
जिसका कृपाण रणभूमि में ही चमका।
मृत्यु भी मिटा न सकती है दुनिया से उसे,
डर होता उसको न यम और बम का।

बारडोली है

[१]

बढ़ गया साहस अपार पाप का भी आज,
पुन्य से ससैन्य चला करने ठिठोली है।
लाज का न लेश पहिले ही रहा मानस में,
रहा सहा अंश निर्लज्जता ने धो ली है॥
'रसिक' नृशंसता ने होकर कठोर अति,
शुद्ध स्वत्व सुधा में अनीति-रस घोली है।
लेने को स्वराज्य औ मिटाने को स्वदेश-क्लेश,
प्रस्तुत हृदय से हुआ आज बारडोली है॥

[२]

देख कर दृढ़ता औ बीरता की तीक्ष्ण अग्नि,
हिंसा, हठ, हेकड़ी की भीत हुई पोली है।
धर्म ने अधर्म को पछाड़ा है 'रसिक' आज,
सत्य ने असत्य की समस्त पोल खोली है॥
न्याय ने अन्याय का मिटाया है महत्व पूर्ण,
नीति ने अनीति की अशान्त प्रभा तोली है।
लाजपत-तुल्य लज्जा रख लिया भारत की,
मोहन-तिलक! तुझे धन्य बारडोली है॥

बारडोली का

राष्ट्र बलि-वेदी पर बलि चढ़ने के लिये,
हुआ लेश भी न तुम्हें भीति गोला गोली का।
तन , मन, धन और जीवन भी वार दिया,
किन्तु रख लिया अभिमान निज बोली का॥
किया मग़रूरों का ग़रूर भरपूर चूर,
लुटने दिया न अधिकार निज टोली का।
मिट जाने दिया सर्वस्व ही 'रसिक' पर,
नाम मिटने न दिया वीरो ! बारडोली का॥

बारडोली की

प्रबल प्रताप सत्यता का रखने के लिये,
रक्षा करने को राष्ट्रवादिता के डोली की।
प्रेम से बचाने को महत्व स्वाधिकारों का औ'
लज्जा रखने को प्राणधारियों के टोली की॥
शान्ति से निबाहने को भारतीयता अनन्य,
आत्म-अभिमान के प्रसिद्ध हमजोली की।
हिंसक हठीलों का घमण्ड तोड़ने के लिये,
शान्तिमय लड़ाई हो रही है बारडोली की॥

शहीद

[१]

मृत्यु-मार्ग के पथिक ! छेड़ मत अपनी तान नशीली ।
ठहर ठहर मत ठोंक कफ़न में राजशक्ति के कीली ॥
स्वतन्त्रता-तन्त्री की मंजुल तारें जो थीं ढीली ।
क्यों तू अपने क्रान्ति-गान से करता उन्हें सुरीली ?

[२]

क्यों संन्यासी सा सौंपे देता है जीवन प्यारा ?
क्या कहता है "उथल पुथल कर दूँगा मैं जग सारा" ?
क्या कहता है "फाँसी की टिकठी पर हूँ दीवाना !
देश-प्रेम की मीठी मदिरा पीकर हूं मस्ताना" ॥

[३]

आह ! वधिक के कर से क्यों पीता है विष के प्याले ?
प्राण-दान देने को प्रस्तुत है क्यों ओ मतवाले ?
निज अस्तित्व मिटा मत, माँ का तू तो है दृग-तारा ।
काँप उठेगी भूमि, व्योम बरसावेगा अङ्गारा ॥

[४]

डुबो सकेंगी तुझे न गहरे अम्बुधि की भी धारें ।
छूट पड़ेंगी जल्लादों के कर से भी तलवारें ॥
रख न सकेंगी तुझे क़ैद, बन्दी-गृह की दीवारें ।
दबा सकेंगी जोश न तेरा दुनियाँ की सरकारें ॥

[५]

सींच सींच निज रक्त-धार से देश-प्रेम का पौदा।
महँगा बहुत ख़रीद रहा तू स्वतन्त्रता का सौदा॥
इतने पर भी सस्तेपन का करता क्यों अन्दाज़ा?
आहा! है बहिश्त का तेरे लिये खुला दरवाज़ा?

[६]

तेरे स्वागत को आईं हैं देख देव-ललनायें?
'रसिक' स्वयं तूही कह तुझ पर क्यों न पुष्प बरसायें?
क्यों न देखने को तुझको नभ से तारागण टूटें?
क्यों न देख कर तुझे सभी निज जीवन के फल लूटें?

[७]

क्यों न देख कर तुझे पाशविक बल वाले घबरायें?
क्यों न देख कर तुझे राज़्य-मद-मतवाले थर्रायें?
क्यों न देख कर तुझे गगन में घेरें क्रान्ति-घटायें?
क्यों न देख कर तुझे देश-प्रेमीगण बलि बलि जायें?

* * *

क्यों न फूँक दे मुरदादिलवालों में जीवन ताज़ा?
ओ शहीद! तेरा यह खूँ बरसाता हुआ जनाज़ा?

——

प्राचीन भारत

अब वह दिन नहीं रह गये भारत के,
जब स्वाधिकारों का तराना सब गाते थे।
वीरता से जब अपमानकारियों का सर,
खींच कर करवाल धड़ से उड़ाते थे॥
'रसिक' स्वदेश-बलि-वेदी पर सानुराग,
आगे बढ़ कर प्राण-सुमन चढ़ाते थे।
मर मर कर गिर गिर पड़ते थे पर,
उठ उठ कर रुण्ड मुण्ड लड़ जाते थे॥

——

आधुनिक-भारत

[१]

अब तो महान अपमान सह कर हाय !
श्वान औ शृगालों सा स्व-जीवन बिताते हैं।
सुन लेते ग़ैरों की हैं गालियाँ समोद पर,
निज बन्धुओं ही पर बल आज़माते हैं।
दीन दुखियों की वेदना से भरे हुए गान,
किसी भाँति से भी नहीं मन को सुहाते हैं
क्यों न ज्वालामुखी सा भभक उठता है यहाँ ?
प्रलय के दिन क्यों समीप नहीं आते हैं ?

[२]

सह कर पदाघात जब भूमि-कण तक,
दानवों से मानवों के शीश पर आते हैं।
प्रबल प्रतापी गज गण को भी देखकर,
सिंह-शिशु पिल पड़ने को अकुलाते हैं ॥
'रसिक' विदेशियों के द्वारा बात बात पर,
भारत-निवासी आह ! धक्के आज खाते हैं।
आश्चर्य हमें तो महान इस बात का है,
क्यों न कर क्रान्ति यह मर मिट जाते हैं ?

दीपमालिका

इस ओर कृषकों की टूटी फूटी झोंपड़ी है,
पूँजीपतियों की उस ओर है अटालिका।
उस ओर बेबी, बाबा फिरते समोद देखो,
इस ओर रोती क्षुधा-ग्रस्ता दीना बालिका ॥
देवियाँ कसाले सहती हैं इस ओर हाय !
मौज मारती हैं उस ओर नग्ना कालिका।
'रसिक' बताओ कैसे स्वागत तुम्हारा करें,
देख लो करुण-दृश्य तुम भी दीपमालिका ॥

साम्यवाद

आना चाहता है साम्यवाद का ज़माना शीघ्र,
पर्णकुटियाँ भी जहाँ पर हैं महल से।
छोटे बड़े का न जहाँ भेद लेशमात्र भी है,
कार्य सधते हैं न कदापि जहाँ छल से॥
जहाँ पर पूर्ण स्वाधिकार है सबों को प्राप्त,
बली हैं जहाँ के नर अपने ही बल से।
सुकवि 'रसिक' जहाँ दुःख है न नाम को भी,
खिले रहते हैं नर जहाँ के कमल से॥

अपूर्ण प्रतिकार

काँप उठती है करुणा भी सचमुच आह!
दीन दुखियों के दुःखपूर्ण हाहाकार से।
अनायास सरल हृदय भी है हिल जाता,
'रसिक' प्रवञ्चकों के पाप-व्यवहार से॥
कठिन कृपाणाघात सी ही वेदना है होती,
चीत्कार करता है चित्त अविचार से।
बदले की बुझती है प्रबल प्रचण्ड अग्नि,
विश्व में कदापि न अपूर्ण प्रतिकार से॥

देशबन्धु

तन मन धन जीवन स्वदेश पर जो सानन्द चढ़ाते हैं।
वही विश्व में देश-बन्धु की पावन पदवी पाते हैं॥

[१]

मातृभूमि जिन वीरों को प्राणों से बढ़ कर प्यारी है।
जिनकी आत्म-शक्ति के सन्मुख शक्ति विश्व की हारी है॥
जिनकी प्रभा धनी, निर्धन, सब को समान उपकारी है।
जिनकी भक्ति-सुमन से सुरभित राष्ट्रीय फुलवारी है॥
हँसते हँसते जो माँ की बलि-वेदी पर चढ़ जाते हैं।
वही विश्व में देश-बन्धु की पावन पदवी पाते हैं॥

[२]

सब से बढ़ कर प्यारा जिनको जग में है अपना अधिकार।
साधन करते सभी कार्य को जिनके सुन्दर शुद्ध विचार॥
गा कर जिनकी गुण-गाथायें कवि भी कभी न पाता पार।
शान्ति अहिंसा व्रत पर जिनके शीश झुकाता है संसार॥
'रसिक' प्रेम पूर्वक जो जग से अत्याचार मिटाते हैं।
वही विश्व में देश-बन्धु की पावन पदवी पाते हैं॥

———

क़ैदी

[१]

विद्रोहात्मक गया विचारा मेरा भाषण हलका।
निरपराध ही माँगा जाता मुझसे आज मुचलका॥
दिया गया हा! ठूँस जेल में जैसे चोर उचक्का।
यह व्यवहार देखकर उनका मैं ही हूँ भौचक्का॥

[२]

जाने क्यों मुझसे है उनको इतना भीषण खटका।
जो निर्दोषी होने पर भी गया यहाँ हूँ पटका॥
यही सुनोगे जिसकी चाहो ले लो क्यों न गवाही।
"सत्याग्रहियों की सेना में था यह एक सिपाही॥

[३]

डाला कहीं न डाका इसने है न किया खूँरेज़ी।
इसे तुल्य हैं दोनों हिन्दुस्तानी औ अंग्रेज़ी॥"
भूखों मरते हैं हा! करके यदि दिन-रात ग़ुलामी।
बन जावें फिर क्यों न कहो हम स्वतन्त्रता के हामी?

[४]

यदि स्वदेश-अनुराग द्वेष है तो अवश्य हूँ दोषी!
सभी दण्ड स्वीकार मुझे है हूँ अपार सन्तोषी॥
क्षमा माँग कर छुटकारे का हूँ न लेश अभिलाषी।
तिल तिल कर लो प्राण या कि दो एक बार ही फाँसी॥

NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
No 483
Date 11.12.71
GOVT. OF INDIA

खद्दर

[१]

'रसिक' विलासियों का करेगा मलिन मुख,
कृषक-कुमारियों की लाज को बचावेगा।
हल कर देगा होमरूल का जटिल प्रश्न,
विघ्नकारियों के लिये वज्र बन जावेगा॥
लन्दन, लिवरपूल लास्गो लङ्काशायर औ,
मान मैनचेष्टरों का धूल में मिलावेगा।
फिर से स्वदेशी व्यवसाय का प्रचार कर,
राष्ट्र की दरिद्रता को खद्दर मिटावेगा॥

[२]

आगे बढ़ कर साभिमान भव्य भारत को,
सार्वभौमता का दिव्य छत्र पहनावेगा।
गर्वीले शत्रुओं का सर्व गर्व खर्व कर,
सर पर उनके विपत्ति-वज्र ढावेगा॥
दीन, दुखियों का दुःख दूर कर देगा शीघ्र,
फिर से 'रसिक' राम-राज्य यहाँ लावेगा।
खद्दर की शक्ति बम से भी है प्रबल अभी,
खद्दर के बल से ज़माना हिल जावेगा॥

[३]

दुर्जन हैं शान्त होते जैसे दण्ड द्वारा सदा,
हो जाती है शान्त जैसे अग्नि ठण्ढे जल से।
हो जावेंगे शान्त विघ्नकारी उसी भाँति शीघ्र,
कर्मयोगी देश-सेवकों के दिव्य दल से॥
'रसिक' विदेशी वस्तुओं का पूर्ण त्याग कर,
भस्मसात करो उन्हें प्रबल अनल से।
कौन नहीं जानता है आज इस बात को कि,
ले लेगा स्वराज्य हिन्द खद्दर के बल से॥

[४]

एकमात्र खद्दर का लेलें अवलम्ब यदि,
खद्दर के बल से ज़माना यह हिल जाय।
आपस का द्वेष और वैमनस्य मिट जाय,
हिन्दू मुस्लिमों का फटा हुआ दिल सिल जाय॥
सुन्दर समुन्नत हो भारतीय व्यवसाय,
मुरझाये मानस की कञ्ज-कली खिल जाय।
'रसिक' विदेशियों का मुख जोहना न पड़े,
भारत को शीघ्र ही स्वराज्य फिर मिल जाय॥

महारानी लक्ष्मीबाई

[१]

भारत में जब फ़िरङ्गियों ने पैर जमाना चाहा था।
गया तभी लक्ष्मीबाई से झाँसी का नृप ब्याहा था
तूती बोल रही थी जब नाना साहब के कामों की।
खटक उठी डलहौज़ी को तब सम्पति थी कुछ ग्रामों की॥

[२]

किन्तु काल-गति लेश मात्र भी नहीं किसी ने लख पाये।
झाँसी के सौभाग्य-गगन में भी काले घन घिर आये।
निस्सन्तान नृपति झाँसी के मरे, भाग्य माँ का फूटा।
दस्यु गणों ने अवसर पाकर मानो रत्नाकर लूटा॥

[३]

सन्तति-हीन मरे जो नृप ले लिया राज्य उसका जावे।
त्याग राज्य-सम्बन्ध शासकों से वह कुछ पेंशन पावे॥
राज्य-स्थापन-राजनीति यह कैसी निन्द्य निराली है?
सौदागर से राजा बनने की क्या पुण्य-प्रणाली है?

[४]

गोद न कोई ले अब से, था डलहौज़ी का अनुशासन
व्यग्र वहाँ थे सभा, न था आश्वासन को भी आश्वासन॥
वाइसराय महोदय की तब झाँसी पर शनि-दृष्टि पड़ी।
रण-चण्डी दुर्गा सी रानी ले कृपाण हो गई खड़ी॥

[५]

लेफ्टिनेन्ट वौकर आ पहुँचा लेकर हाथों में बन्दूक।
अश्व-वाहिनी रानी ने पर किया शीघ्र ही वार अचूक॥
हाथ कटे, पर प्राण बचाया था वौकर ने रण से भाग।
रानी पहुँची वहाँ जहाँ पर तोपें उगल रही थीं आग॥

[६]

जनरल स्मिथ भी लक्ष्मीबाई से थे बुरी तरह हारे।
अनगिनती गोरों को रानी ने थे निज कर से मारे॥
गया ग्वालियर भी था गोरों की दैहिक दुर्बलता से।
लिया कालपी भी था रण-देवी ने सौम्य सरलता से॥

[७]

क्या से क्या होगया किसी ने नहीं जिसे अनुमाना था।
फ़िरङ्गियों ने यहीं भारतीयों का जौहर जाना...था॥
कितनों के सर फटे और थे कितनों के कर, पद टूटे।
सर ह्यूरोज़ सदृश वीरों के थे रण में छक्के छूटे॥

[८]

रिपुओं से थी घिरी कालिका सी पर बढ़ती थी आगे।
भारत था हतभाग्य किन्तु थे भाग्य शत्रुओं के जागे॥
अश्व अड़ा जाकर रानी का नाले के तट पर हा! हन्त!
झाँसी सी क्या सारे भारत को तज भागा भव्य-वसन्त॥

[९]

जाओ रानी ! स्वर्ग 'रसिक' की पर यह विनय सुने जाना ।
भारत की उन्नति के हित तुम ले अवतार पुनः आना ॥
यद्यपि हैं हम सब ग़ुलाम पर तुम्हें न भूलेंगे रानी !
यही कहेंगे रक्खा था झाँसी की रानी ने पानी ॥

[१०]

प्रेम प्रपीड़ित नर न वीरता बीर गणों की लखते हैं ।
वही जान सकते वीरों को वीर-हृदय जो रखते हैं ॥
बच्चे बच्चे के हृत्पट पर इनकी लिखी कहानी है ।
इनका सुयश गान करने में पार न पाती बानी है ॥

भविष्य वाणी

जीवन के जागृति की ज्योत्स्ना जगेगी फिर,
आपस की फूट का कुफल फट जायगा ।
शिवाजी, प्रताप बीर-श्रेष्ठ फिर जन्म लेंगे;
अवनति का घोर अन्धकूप पट जायगा ॥
पावन प्रभात होगा फिर से स्वतन्त्रता का;
'रसिक' विदेशियों का हाथ हट जायगा ।
भारतीय फिर अधिकारी होंगे भारत के;
हिंसकों हठीलों का घमण्ड घट जायगा ॥

दीनबन्धु

'रसिक' दरिद्रता मिटाओगे न यदि तुम;
कैसे काल-चक्र का महत्व दिखलाओगे ?
देखोगे न यदि दया-दृष्टि-द्वारा दयासिन्धु !
कैसे अपने को 'करुणेश' बतलाओगे ?
कौन तुम्हें 'प्रेम का पयोनिधि' कहेगा यदि;
तुम उसमें न बसुधा को नहलाओगे ?
दीन जनों का न यदि साथ दोगे दीनानाथ !
तुम्हीं कहो कैसे 'दीनबन्धु' कहलाओगे ?

स्वराज्य

'रसिक' स्वराज्य में न क्लेश लवलेश होगा;
विश्व में कहीं भी न ग़ुलाम कहलावेंगे।
भारतीय सभ्यता का विस्तृत विकाश होगा;
स्वाधिकार सारे स्वयमेव क्यों न आवेंगे ?
सुन्दर समुन्नत करेंगे कला-कौशल को;
देशवासी फिर राम-राज्य-सुख पावेंगे।
भू पर समोद विचरेंगे स्वच्छन्दता से;
विजय की वर वैजयन्ती फहरावेंगे॥

दीवाने

[१]

रोकी जा न सकेंगी उनके जीवन की धारायें।
उनकी उन्नति-प्रगति तीव्रतर कर देंगी बाधायें॥
आह ! अमित घायल हैं फिर भी खुले हुए हैं सीने।
चमका दें बलि-वेदी को भी क्यों न अमूल्य नगीने ?

[२]

जितना चाहे कर उनके नश्वर तन की बरबादी।
होंगे रे जल्लाद ! न तेरे वे कदापि फ़र्यादी॥
खा सकते देशार्थ मोद से वे जलता अङ्गारा।
वे स्वदेश के हैं, स्वदेश है उन्हें प्राण से प्यारा॥

[३]

सह कर अपने भग्न हृदय ही पर गोले फ़ौलादी।
क्यों न तोड़ ज़ंज़ीरों को ले लें अपनी आज़ादी ?
पराधीन होकर भी हैं यदि कर सकते न गुज़ारा।
तो फिर इस जीवन से जीवन-दान क्यों न हो प्यारा ?

[४]

आँखों के आगे आँखों के तारे लूटे जायें।
सर्वनाश फिर भी आगे बढ़ने में वे सकुचायें॥

क्यों न सौंप दें शीश क्रान्ति-मन्दिर के बीर पुजारी ?
क्यों न ख़ून से सींची जाये स्वतंत्रता की क्यारी ?

[५]

क्यों न रहें उन्मत्त पान कर विप्लव-विष के प्याले ?
क्यों न राष्ट्र पर प्राण चढ़ा दें राष्ट्रीय मतवाले ?
क्या न दीप पर मर मिट जाते मस्ताने परवाने ?
शान्त कभी क्या रह सकते आज़ादी के दीवाने ?

क्या करना होगा ?

[१]

मातृ-भूमि को विपज्जाल से मुक्त तुम्हें करना होगा ।
स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर शीश तुम्हें धरना होगा ॥
स्वेच्छाचारी निरंकुशों का गर्व तुम्हें हरना होगा ।
याद रहे नूतन जीवन के लिये तुम्हें मरना होगा ॥

[२]

कण्टक-पथ पर नङ्गे पैरों ही तुमको चलना होगा ।
ग्रीष्मकाल के प्रखर सूर्य की ज्वाला से जलना होगा ॥
तुम्हें न अपने प्रण से बीरो ! लेशमात्र टलना होगा ।
स्वाधिकार के लिये बर्फ़ के टुकड़ों सा गलना होगा ॥

दीवाने

[१]

रोकी जा न सकेंगी उनके जीवन की धारायें।
उनकी उन्नति-प्रगति तीव्रतर कर देंगी बाधायें॥
आह! अमित घायल हैं फिर भी खुले हुए हैं सीने।
चमका दें बलि-वेदी को भी क्यों न अमूल्य नगीने?

[२]

जितना चाहे कर उनके नश्वर तन की बरबादी।
होंगे रे जल्लाद! न तेरे वे कदापि फ़र्यादी॥
खा सकते देशार्थ मोद से वे जलता अङ्गारा।
वे स्वदेश के हैं, स्वदेश है उन्हें प्राण से प्यारा॥

[३]

सह कर अपने भग्न हृदय ही पर गोले फ़ौलादी।
क्यों न तोड़ ज़ंज़ीरों को ले लें अपनी आज़ादी?
पराधीन होकर भी हैं यदि कर सकते न गुज़ारा।
तो फिर इस जीवन से जीवन-दान क्यों न हो प्यारा?

[४]

आँखों के आगे आँखों के तारे लूटे जायें।
सर्वनाश फिर भी आगे बढ़ने में वे सकुचायें॥

क्यों न सौंप दें शीश क्रान्ति-मन्दिर के बीर पुजारी ?
क्यों न .खून से सींची जाये स्वतंत्रता की क्यारी ?

[५]

क्यों न रहें उन्मत्त पान कर विप्लव-विष के प्याले ?
क्यों न राष्ट्र पर प्राण चढ़ा दें राष्ट्रीय मतवाले ?
क्या न दीप पर मर मिट जाते मस्ताने परवाने ?
शान्त कभी क्या रह सकते आज़ादी के दीवाने ?

क्या करना होगा ?

[१]

मातृ-भूमि को विपज्जाल से मुक्त तुम्हें करना होगा।
स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर शीश तुम्हें धरना होगा॥
स्वेच्छाचारी निरंकुशों का गर्व तुम्हें हरना होगा।
याद रहे नूतन जीवन के लिये तुम्हें मरना होगा॥

[२]

कण्टक-पथ पर नङ्गे पैरों ही तुमको चलना होगा।
ग्रीष्मकाल के प्रखर सूर्य की ज्वाला से जलना होगा॥
तुम्हें न अपने प्रण से बीरो ! लेशमात्र टलना होगा।
स्वाधिकार के लिये बर्फ़ के टुकड़ों सा गलना होगा॥

[४]

जिसे जानता था वह उचित सदैव उसे;
करता था त्याग कर डर महा यम का ।
विचलित कर सकता था लेशमात्र नहीं;
धर्म-पथ से कदापि गोला उसे बम का ॥
हिम्मत न करता था सन्निकट आने की भी;
चकित सा देखता था चक्र उसे भ्रम का ।
सुकवि 'रसिक' सत्याग्रही तिलकदेव;
भारत-गगन में था चन्द्रमा सा चमका ॥

[५]

विप्लवी था, क्रान्ति की प्रचंड प्रतिमा था पर;
शान्ति और सान्त्वना का पावन प्रदाता था ।
अग्नि सा, प्रलय सा औ सूर्य सा था तेज-पुंज;
पशु, पक्षियों का भी परन्तु पूर्ण त्राता था ॥
हिंसा का बिनाशक था, प्रेम का प्रकाशक था;
सच्चे गुरु ज्ञान का 'रसिक' सच्चा ज्ञाता था ।
जगत-शिरोमणि-तिलक श्री तिलकदेव,
सचमुच भारत के भाग्य का विधाता था ॥

[६]

देख कर देश की दुरूह दुरावस्था हाय !
उस सहृदय को नित्य कष्ट होता भारी था ।

मूल-मंत्र उसका था खद्दर ही; और वह;
'रसिक' स्वतंत्रता का पावन पुजारी था ॥
राष्ट्र का प्रकाश था, विकाश राजनीति का था;
उसका प्रशान्त रूप अघ-ओघ-हारी था।
मातृभूमि का था सच्चा पुत्र श्री तिलकदेव;
प्रबल पराक्रमी था, शान्त क्रान्तिकारी था ॥

[७]

दासता-तिमिर का प्रभाव हरने के लिये;
सूर्य के समान ही महा प्रकाशमान था।
सत्य का प्रचारक था बीर था, सुधारक था;
राष्ट्र का 'रसिक' एकमात्र उपमान था ॥
स्वत्व का था तत्व औ महत्व था स्वतंत्रता का;
गीता का तो गौरव प्रपूर्ण गुरु ज्ञान था।
भारत-तिलक लोकमान्य श्री तिलक देव;
भरत-निवासियों का तन, मन, प्रान था ॥

[८]

अग्नि सा प्रचंड था, महान मार्तंड सा था;
ओज सा अखंड था, बली था, क्षमागार था।
भाव आत्म-बलिदान का था फूँक देता वह;
भारतीय सभ्यता का करता प्रचार था ॥
लेता अवलम्ब था स्वतंत्रता का नित्य प्रति;
दीन दुखियों का, धनियों का प्राणाधार था।

श्री-पति ने दासता का पाश तोड़ने के लिये;
लोकमान्य तिलक का लिया अवतार था ॥

[९]

पराधीनता का पाप, दाप, पश्चात्ताप जब;
भारत-निवासियों में भली भाँति छाया था ।
देख कर पशु-बल का प्रबल उन्माद;
जब देश-सेवकों का दल अकुलाया था ॥
नीति का महत्व जब बम बरसाने में था;
करुण-कथा को अत्याचार ने छिपाया था ।
'रसिक' फ़िरङ्गियों का गर्व हरने को तब;
शान्त क्रान्तिकारी श्री तिलक देव आया था ॥

[१०]

बश में किये था वह मन और इन्द्रियों को;
ब्रह्मचर्य्य-व्रत के प्रभाव से अरुण था ।
बृद्धावस्था में भी वह बृद्ध था न ज्ञात होता;
वह तो सदैव तप-तेज से तरुण था ॥
स्वर्गीय छटा मुख पर थी विराजमान;
रहता 'रसिक' सदा वह सकरुण था ।
भारत-बसुन्धरा का गौरव तिलकदेव;
दिव्य दया-दान में द्वितीय ही बरुण था ॥

[११]

प्रबल विदेशियों के अत्याचार-कंटकों से;
हुआ परिपूर्ण जब राष्ट्र-उपवन था।
'रसिक' निराशा-रूप घोर बादलों से जब;
ढँक गया देश का स्वतंत्रता-गगन था॥
लेश भी न क्लेश थे स्वदेश का मिटाते लोग;
सबों ने लगाया राज-भक्ति में लगन था।
तभी भारतीयता का भाव भरने के लिये;
लोकमान्य तिलक का! हुआ आगमन था॥

[१२]

जगा देता जीवन की ज्योति था सदैव वह;
हर लेता खोज कर कृषकों का क्लेश था।
पदों पर उसके था लोटता जगत-सुख;
उसका 'रसिक' किन्तु साधुओं सा वेश था॥
हिन्दू मुस्लिमों को सम-दृष्टि से बिलोकता था;
किसी से भी उसको न द्वेष लवलेश था।
मूर्ति था पवित्रता की, तत्व स्वाधिकारों का था;
लोकमान्य वसुधेश था न, हृदयेश था॥

[१३]

दासता के भावों को समूल था मिटाता वह;
करता था लोभ लेशमात्र भी न राज का।

'रसिक' प्रसन्नता से पूर्ण रहता था सदा;
इच्छुक न हुवा कभी वह सुख-साज का ॥
जन्मभूमि का था प्यारा लाड़ला दुलारा लाल;
नाविक था भव्य भारतीयता-जहाज का।
ज्ञाता राजनीति का महान था तिलक देव;
त्राता था समाज का' बिधाता था स्वराज का॥

[१४]

कोमल था, उग्र था, मधुर मिष्ट-भाषी भी था;
भ्रम, भीति, भूल मानवों की हर लेता था।
उसकी ही शिक्षा औ सुधारों के प्रभाव द्वारा;
कलियुग पूर्णतया बन गया त्रेता था॥
'रसिक' विलोक कर कृषकों की दीन दशा;
सौम्य सान्त्वनायें उन्हें नित्य वह देता था।
किसी से भी घृणा करता था लेशमात्र नहीं;
तिलक जगत-अनुकरणीय नेता था॥

[१५]

दासता से सूखी हुई चित्त रूपी लतिका को;
राष्ट्र रस-द्वारा सींच कर सरसाता कौन?
स्वार्थ-परिपूर्ण नाशमान जगतीतल में;
दीनों पर दया-वारि-बिन्दु बरसाता कौन?
हर कर शोक वेदनायें और यातनायें;
देश के दरिद्र कृषकों को हरषाता कौन!

'रसिक' न होता अवतार श्री तिलक यदि;
सत्य का महत्व दुनिया को दरसाता कौन ?

[१६]

जैसे चन्द्रिका है चन्द्रमा से मिल जाती वैसे;
वह बीरता को स्वाधिकार से मिला गया।
जैसे उषाकाल में कमल खिल जाते वैसे;
वह मानवों का मन-सुमन खिला गया॥
जैसे अलि मकरन्द पान करते हैं वैसे;
वह देश-अनुराग-अमृत पिला गया।
जैसे झंझावात से हैं पत्ते हिल जाते वैसे;
लोकमान्य पापियों के दल को हिला गया॥

[१७]

राष्ट्र का प्रचंड पारावार कैसे पार करें
दमन का पड़ा विकराल दलदल है ?
आड़ में स्वदेश-सेवा के है स्वार्थ-सिद्धि होती;
निश्छल नरों में भी दिखाई देता छल है॥
सूझता न हाय ! हमें मोह-वश कर्म-पथ;
काँप रही चञ्चल प्रगति पल पल है।
आओ लोकमान्य श्री तिलक एक बार फिर;
'रसिक' तुम्हारे बिना भारत विकल है॥

महाराज नन्दकुमार की फाँसी

[१]

हमारा ही पा कर साहाय्य;
कहाता बङ्गेश्वर तू आज।
हमीं से फिर ऐसा व्यवहार;
न आती हा! हा! तुझको लाज॥

[२]

समझता था पहले ही आह!
कुटिल हेस्टिंग्स! मैं तेरी चाल।
पड़ा था इन आँखों पर किन्तु;
बिषम भ्रम का पर्दा विकराल॥

[३]

अगर होता मुझको यह ज्ञात;—
कि है यह सब तेरा षड़यन्त्र।
न होता फिर तू सफलीभूत;
न मुझ पर चलता तेरा मन्त्र॥

[४]

खोल कर तेरी सारी पोल;
मिटा देता तेरा व्यक्तित्व।
बङ्ग में क्या, दुनिया में आह!
न रह जाता तेरा अस्तित्व॥

[५]

स्वयं अपने ही दिल से पूछ;
हृदय पर अपने रख कर हाथ।
यही क्या बदला है उपयुक्त ?
दिया जो मैंने तेरा साथ ?

[६]

परम पाखण्डी, डाकू, धूर्त;
फ़रेबी छलियों के सरताज।
मुझे 'जाली' कहने में क्यों न;
गिरा तेरी जिह्वा पर गाज ?

[७]

विषम विश्वास-विघाती देख;
मुझे है हार्दिक क्रोध विशाल।
यही इच्छा है मेरी आज;
तुझे डस लूँ मैं बन कर व्याल॥

[८]

फोड़ कर तेरी दोनों आँख;
मिटा दूं तेरा सब अभिमान।
मोद से खा कर तेरे अङ्ग;
तृप्त हो जावें गीदड़ श्वान।

महाराज नन्दकुमार की फाँसी

[१]

हमारा ही पा कर साहाय्य;
कहाता बङ्गेश्वर तू आज।
हमीं से फिर ऐसा व्यवहार;
न आती हा! हा! तुझको लाज॥

[२]

समझता था पहले ही आह!
कुटिल हेस्टिंग्स! मैं तेरी चाल।
पड़ा था इन आँखों पर किन्तु;
बिषम भ्रम का पर्दा बिकराल॥

[३]

अगर होता मुझको यह ज्ञात;—
कि है यह सब तेरा षड्यन्त्र।
न होता फिर तू सफलीभूत;
न मुझ पर चलता तेरा मन्त्र॥

[४]

खोल कर तेरी सारी पोल;
मिटा देता तेरा व्यक्तित्व।
बङ्ग में क्या, दुनिया में आह!
न रह जाता तेरा अस्तित्व॥

[५]

स्वयं अपने ही दिल से पूछ;
हृदय पर अपने रख कर हाथ।
यही क्या बदला है उपयुक्त ?
दिया जो मैंने तेरा साथ ?

[६]

परम पाखण्डी, डाकू, धूर्त;
फ़रेबी छलियों के सरताज।
मुझे 'जाली' कहने में क्यों न;
गिरा तेरी जिह्वा पर गाज ?

[७]

विषम विश्वास-विघाती देख;
मुझे है हार्दिक क्रोध विशाल।
यही इच्छा है मेरी आज;
तुझे डस लूँ मैं बन कर व्याल॥

[८]

फोड़ कर तेरी दोनों आँख;
मिटा दूं तेरा सब अभिमान।
मोद से खा कर तेरे अङ्ग;
तृप्त हो जावें गीदड़ श्वान।

[९]

निपट निष्ठुरता के अवतार;
तुझे हेस्टिंग्स! मैं देता शाप।
"न पावेगा तू जग में शान्ति;
तुझे होगा सुख भी सन्ताप॥

[१०]

शीघ्र भारत से रे नर-कीट;
मिटेगा तेरा अत्याचार।
स्वयं तुझको तेरे ही मित्र;
कहेंगे निष्ठुर नीच अपार॥

[११]

हमारे आहों का संघर्ष;
तुझे कर देगा क्षण में क्षार।
जटिल जग के सागर से कभी;
न होगा तेरा बेड़ा पार॥

[१२]

विश्व को मिल जावेगा मूढ़!
प्रवञ्चकता का पूर्वाभास।
पढ़ेगा नफ़रत से वह नित्य;
क्रूर! तेरा काला इतिहास॥

[१३]

न देखा दानवता का आह !
कभी था ऐसा तांडव-नृत्य ।
किन्तु वह भी लज्जित है हुई;
देख कर तेरे कलुषित कृत्य ॥

[१४]

ओह ! लज्जाहत ! इम्फ़े ! नीच !
न्याय इसको तू कहता न्याय ।
शत्रु ही जब न्यायक है क्यों न;
अदोषी हो जावें निरुपाय ?

[१५]

लूट कर मेरा सब कुछ हाय !
न्याय का तू गाता है राग ।
सुना कर मैं स्व करुण-वृत्तान्त;
पाप-प्रहसन में क्यों लूँ भाग ?

[१६]

जला देती मुझको स्वयमेव;
दग्ध दिल की क्रोधाग्नि प्रचण्ड ।
सजा कर व्यर्थ न्याय का स्वाँग;
मुझे देता फाँसी का दण्ड ॥

[१७]

लुटेरे ! खींचा तू ने आज;
न्याय का गन्दा नङ्गा चित्र।
क्यों न हो हत्यारा हेस्टिंग्स;
रहा तेरा सहपाठी मित्र॥

[१८]

आह ! पैशाचिकते ! क्यों आज;
रुधिर की तू करती है वृष्टि ?
राक्षसी ! तेरी लीला देख;
हुई कम्पित है सारी सृष्टि॥

[१९]

सरलते ! तेरे कारण आज;
गँवाता हूँ मैं अपनी जान।
न्याय ! तेरी वेदी पर आज;
हमारा होता है बलिदान॥

[२०]

न भारतवासी ! भूलो कभी;
हमारी फाँसी की तुम याद॥
याद यह भर दे तुममें जोश;
क्रान्ति, साहस, विप्लव, उन्माद॥

[२१]

बङ्गवासी भ्रातागण ! कभी;
न तुम भी भूलो यह दृष्टान्त।
न होना पल भर को भी शान्त;
प्रलय-रवि सा रहना दुर्दान्त॥

[२२]

हिन्द के प्यारे पुत्रो ! सुनो;
मचाओ तुम ऐसा चीत्कार।
कि जिससे नभ हो डाँवाडोल;
दहल जावे सारा संसार॥

[२३]

बढ़ें सारे सागर स्वयमेव;
डुबो दें पृथ्वी को तत्काल।
कि जिससे हो हिंसा का ह्रास;
मिटे छलियों का मादक जाल॥

[२४]

कि जिससे आ जावे भूचाल;
प्रकृति के छिपे रत्न अनमोल।
अन्त हो जावे स्वयं अनन्त;
उठे प्रभु का सिंहासन डोल॥

[२५]

ऐश्वर्यो ! जाओ तुम कहीं;
तुम्हारा है न यहाँ अब काम ।
बनाया है असुरों ने आज,
हिन्द को अपना लीला-धाम ॥

[२६]

भारतीयो ! तुम सब को रहे,
हमारी फाँसी का ध्रुव ध्यान ।
ध्यान काँटे सा खटके सदा,
फूंक दे तुममें नूतन जान ॥

[२७]

वेदनायें हों क्रीड़ा तुम्हें,
यातनायें हों स्वर्गानन्द ।
शान्ति भी तुम्हें ज्ञात हो क्रान्ति,
रहो विप्लव से तुम निर्द्वन्द ॥

[२८]

हिन्द ! हृत्पट पर रखना सदा,
हमारी हत्या की तस्वीर ।
अहह ! प्रत्येक रक्त के बूँद,
तुम्हारे भावों को दें चीर ॥

[२९]

हृदय दहला कर कर दें तुम्हें,
घोर पागल, उन्मत्त अपार।
कि जिससे तज प्राणों का मोह,
हमारे बध का लो प्रतिकार॥

[३०]

मिटे; मिट जाने दो सर्वस्व,
उठो रण-वीरों के सरताज।
देख लो अपनी आँखें खोल,
खड़ी रोती है जननी आज॥

[३१]

तुम्हीं सब हो उसके आधार,
हरो संतप्त हृदय की पीर।
अग्नि से उठ, आँधी से दौड़;
पोंछ दो उसके दृग का नीर॥

[३२]

हमारा है अन्तिम अनुरोध,
न रक्खो छलियों में विश्वास।
चूस लेते हैं दिल का ख़ून,
इन्हें यदि होती है कुछ प्यास॥

[३३]

पाप के एकमात्र अवलम्ब,
घृणा की अद्वितीय सन्तान।
कपट की प्रतिमा या प्रतिमूर्ति,
गरल-मय है इनकी मुस्कान॥

[३४]

हृदय से होते हैं ये श्याम,
देह होता है इनका श्वेत।
देवता इन्हें न मानो कभी,
इन्हें समझो दोज़ख के प्रेत॥

[३५]

दयामय! यदि तुम में है न्याय,
बिनय मेरी सुन लो इस बार।
न होने पावे मेरी मुक्ति,
न देखूं मैं सुरपुर का द्वार॥

[३६]

भेज दो फिर दुनिया में मुझे,
बना कर चिनगारी या क्रोध।
'रसिक' बदला ले कर मैं स्वयं,
करूँ अपने ऋण का प्रतिशोध॥

समर में

जा कर महान दृढ़ता औ वीरता से वीरो !
फहरा दो राष्ट्र की पताका विश्व भर में।
बजा कर आत्मिक बल का बिगुल निज,
भर दो नवीन जोश चर औ अचर में॥
'रसिक' है काम करने का ये ज़माना आया,
बन कर कायर न बैठे रहो घर में।
ले कर सुदर्शन चक्र सत्याग्रह का,
बढ़ चलो शीघ्र स्वाधिकार के समर में॥

वे और तुम

बन्धुवत तुमको तो मानते थे भारतीय,
क्लेश में तुम्हारे उनको भी होता रहा क्लेश।
मन में तुम्हारे चाहे द्वेष ही भरा हो पर,
उनके हृदय में तो तुम्हारे प्रति था न द्वेष॥
घृणित निगाहों-द्वारा देखते उन्हें थे तुम,
घृणा थी न उनमें तुम्हारे प्रति लवलेश।
'रसिक' स्व शक्ति पर रहे उन्मत्त तुम,
पर प्राण से भी प्यारा रहा उन्हें निज देश॥

सिंहनाद

[१]

निज साहस का तुम क्षय न करो।
निर्द्वन्द रहो कुछ भय न करो॥
दुर्वृत्ति, अधोगति त्याग करो।
निज बन्धुओं से अनुराग करो॥
मन में धर लो यह मन्त्र सभी।
नर हो न रहो परतन्त्र कभी॥

[२]

सत्याग्रह का व्रत योग-करो।
सुखपूर्वक शाशन-भोग करो॥
निज स्वत्व गहो, निज विक्रम से।
परिपूर्ण बनो अपने श्रम से॥
दुख, शोक, विपत्ति सहो न अभी।
नर हो न रहो परतन्त्र कभी॥

[३]

पुरुषत्व गहो कुछ काम करो।
स्वच्छन्द बनो निज नाम करो॥
बलिदान करो पर शान्ति धरो।
मत ज़ुल्म सहो, कल क्रान्ति करो॥
तुम हो रण-बीर स्वतन्त्र सभी।
नर हो न रहो परतन्त्र कभी॥

[४]

नव जीवन-ज्योति जगाया करो।
बसुधा में सुधा बरसाया करो॥
भयभीत न हो, मनभाया करो।
सुख में न कभी इतराया करो॥
कहलाओगे योग्य उदार तभी।
नरहो न रहो पर तंत्र कभी॥

स्वदेश

जिसे बन्दना करने को यह शीश स्वयं झुक जाता है।
वही देश जग में स्वदेश की पावन पदवी पाता है॥

[१]

नित्य आप से आप उमड़ता रहता है जिसके प्रति प्यार।
गुण गण मंडित गौरव से युत हैं जिसके उपकार अपार॥
सदा समझते जिसके अधिकारों को हम अपना अधिकार।
जिसकी प्रतिभा के सम्मुख हम तुच्छ समझते हैं संसार॥
मृत्युलोक में जो सदैव स्वर्गीय छटा दरसाता है।
वही देश जग में स्वदेश की पावन पदवी पाता है॥

[२]

जिसके प्रति उठते रहते हैं मन-मानस में भाव महान ।
हृदय स्वयं प्रस्तुत रहता है जिस पर होने को बलिदान ॥
है जिसका अपमान ज्ञात होता हमको अपना अपमान ।
जिह्वा कभी न थकती गा कर जिसके गुण-गौरव का गान ॥
धनियों और दरिद्रों का जो तुल्य, रूप से त्राता है ।
वही देश जग में स्वदेश की पावन पदवी पाता है ॥

[३]

बच्चा बच्चा परम प्रेम से जिसके गुण-गण गाता है ।
जिसका वारि-वायु रग रग में नूतन सुख सरसाता है ॥
घन भी नियत समय पर जिस पर निर्मल जल बरसाता है ।
जिसका ध्यान मात्र आने से मन गद्गद् हो जाता है ॥
'रसिक' सदृश कवियों का भी जो परिमित भाग्य-विधाता है ।
वही देश जग में स्वदेश की पावन पदवी पाता है ॥

बिचलित हृदय हमारा

[१]

अपनी तरक़्क़ियाँ हम क्या क्या किसे सुनायें ?
दुनिया में किसको किसको हम क्या थे, क्या बतायें ?
भगवन् ! जो पूछते हो क्यों ये तनज़्ज़ुली है ।
सुन लो, सबब सुनाने को ये ज़बाँ खुली है ॥

जब से रहा न हमको प्रभु ! आप का सहारा ।

सचमुच हुवा तभी से विचलित हृदय हमारा ॥

[२]

हिन्दोस्ताँ में जब से बाहर का माल आया ।

जब से विदेशियों ने अड्डा यहाँ जमाया ॥

हो संकुचित गई है जब से समाज-सीमा ।

जब से लिया है भारत ने दासता का बीमा ॥

देखा दृगों ने जब से है फूट का नज़ारा ।

बिलकुल हुवा तभी से विचलित हृदय हमारा ॥

मर मिट जाने दे

[१]

बढ़ आने दे बीर गणों को मेरी बलि बेदी पर आज ।

इन्हें सजा लेने दे पावन स्वतंत्रता का सुन्दर साज ॥

गुंजित हो जाने दे जग में मेरी बीणा की झनकार ।

बज उठने दे देश-प्रेमियों की हृत्तंत्री के मृदु तार ॥

[२]

ले लेने दे अपने ही आत्मिक बल से अपना अधिकार ।

कर देने दे इनको अपना तन, मन, जीवन, प्रान निसार ॥

हो जाने दे 'रसिक' शिरोमणि को इनके ऊपर अनुकूल ।

इन्हें बना लेने दे अपने पथ के सारे कंटक फूल ॥

[३]

मिट जाने दे आज न्याय का झूठा, थोथा स्वाँग महान ।
भस्मीभूत पुनः हो जाने दे शासक लोगों की शान ॥
सत्याग्रह का सूर्य उदित हो जाने दे फिर से इस बार ।
चकित और विस्मित हो जावे जिसे देख सारा संसार ॥

[४]

स्वयं बजा दे रे रे निष्ठुर काल ! आज तू रण-भेरी ।
बाधा विघ्न नष्ट हो ज़ावें हो ऐसी करुणा तेरी ॥
आते हैं जो वीर उन्हें तू समुत्साह से आने दे ।
हँसते हँसते मातृभूमि पर उनको मर मिट जाने दे ॥

कब तक

[१]

सहे हैं खञ्जर जिगर पै अपने,
मगर न 'उफ़' हम ज़बाँ पै लाये ।
है मार कोड़ों की खाई हमने,
सुनोगे प्यारे ! पुकार कब तक ?

[२]

न है ठिकाना हमारे ग़म का,
ज़बाँ पै ताले पड़े हुए हैं।
फँसी हैं नैया विकट भँवर में,
इसे बचाओगे नाथ कब तक ?

[३]

तुम्हारे भारत में नन्दनन्दन !
हैं गायें कटतीं हज़ारों प्रति दिन।
ये ख़ूबसूरत बदन में स्वामी !
रहेंगे धब्बे सुफ़ेद कब तक ?

[४]

न जोश कम होगा लाठियों से,
न बम से, गन या मशीन गन से।
दबा के शोलों को सूखे तरु में,
कहो तो रक्खेंगे क्रूर कब तक ?

[५]

ये जानते थे कि तुम हो न्यायी,
न ज़ुल्म करने किसी को दोगे।
'रसिक' शिरोमणि ! यही बता दो,
रहेंगे अब हम ग़ुलाम कब तक ?

बलिदानकरो

[१]

दुग्ध, अन्न, घृत वायु जहाँ का सेवन नित्य किया है।
निर्मल आरोग्यता-प्रदायक पावन नीर पिया है॥
जिस रमणीय मंजु बसुधा पर तुमने जन्म लिया है।
जिस जननी ने जग के सब सुख तुम्हें समोद दिया है।
उसी मातृ-भू के कष्टों का सानुराग अवसान करो॥
भरतीय हो तो भारत पर तन, मन, धन बलिदान करो।

[२]

मातृगर्भ से गिरते ही गोदी में तुम्हें उठाया था।
बड़े हुये तब प्रकृति देवि के मंजुल दृश्य दिखाया था॥
सुख, आनन्द और प्रतिभा का दिग्दर्शन करवाया था।
माता से बढ़ मातृ-भूमि ने तुमको सुख पहुँचाया था॥
उठो उठो जीवन अर्पण कर प्रिय स्वदेश-उत्थान करो।
भारतीय हो तो भारत पर तन, मन, धन बलिदान करो॥

[३]

जीत न सकतीं तुम्हें पाशविक शक्ति याद यह कर लो।
आत्म-शक्ति सब से बढ़ कर है इसका ही आश्रय लो॥
सत्याग्रह की भव्य भावना से हृदयस्थल भर लो।
विजयी बनो; बीर गण ! भारत माता का दुख हर लो॥

इस सूखे बनजर को उठ कर फिर नन्दन उद्यान करो।
भारतीय हो तो भारत पर तन, मन, धन बलिदान करो॥

[४]

दृढ़ हाथों में सत्याग्रह का यदि तुम ले लो दंड।
जग में कोई शक्ति नहीं जो उसको कर दे खंड॥
यदि पर्वत आड़े आवे तो चूर चूर कर सकते हो।
यदि समुद्र मर्यादा लाँघे उसे दंड दे सकते हो॥
'रसिक' राष्ट्र-गौरव-गरिमा का उठो उठो गुण-गान करो।
भारतीय हो तो भारत पर तन, मन धन, बलिदान करो॥

आत्मिक शक्ति

[१]

सभी शक्ति से आत्म-शक्ति जग में न्यारी है।
केवल नर को नहीं ईश तक को प्यारी है॥
ऋषि, मुनियों को तो यह अति ही सुखकारी है।
शारीरिक, पाशविक-शक्ति इससे हारी है॥
दीन दुर्बलों के लिये; यह महान मृदु मंत्र है।
यह स्वतंत्र करती उसे; जो जग में परतंत्र है॥

[२]

भाग्य-चक्र में पड़ कर जो सर्वस्व गँवाते।
स्वत्वहीन हो जो दर दर हैं ठोकर खाते॥

इसका ले अवलम्ब जो न फिरते हैं रोते।
वे ही इसके सुप्रभाव से विजयी होते॥
इस पर प्रस्तुत होगई यदि भारत-संतान है।
तो निश्चय निज देश का सभी भाँति कल्याण है॥

—:*:—

विषम व्यौहार

[१]

पशु तुल्य हे जगदीश ! हम हैं विश्व में देखे गये।
कृमि, कीट से भी तुच्छ जग में हाय ! हम लेखे गये॥
हमने किया संसार का उपकार ही भरपूर है।
अवलोक लो, अपकार हम से इस समय भी दूर है॥

[२]

अन्याय, छल, पाखण्ड-रिपु को विद्ध था हमने किया।
मानव-चरित भी तो हमीं ने शुद्ध था अतिशय किया॥
इङ्गलैंड तक को भी हमीं ने ज्ञान-भिक्षा था दिया।
इङ्गलैंड क्या, संसार को विज्ञान-शिक्षा था दिया?

[३]

आदर्श थे हम पूर्णतः यह देश बल का केन्द्र था।
कम्पित रहा करता सदा हमसे स्वयं देवेन्द्र था॥
जिनको निपुण हमने किया वे शान हैं दिखला रहे।
हा ! गोलियों द्वारा हमारा बल वही अजमा रहे॥

[४]

हे न्यायकारी ईश ! क्या यह ही तुम्हारा न्याय है ?
उत्थान के पीछे पतन का रख दिया समुदाय है ?
पाले पड़े हा ! हा ! हमारे दुःख आज अशेष हैं।
अन्याय अत्याचार हम पर हो रहे हृदयेश ! हैं॥

[५]

हमने किया संसार में नित ही नवाविष्कार है।
बदला उसी का नाथ ! क्या यह कष्ट घोर अपार है ?
जगदीश ! हम कैसे कहें तू न्याय का आगार है ?
जब आज हमसे हो रहा इतना विषम व्यौहार है॥

—:*:—

बार बार है

नये उत्साह से हैं पूर्ण सभी लोग हुवे;
खद्दर के चद्दर की अजब बहार है।
देख कर चरखे के सूत की महत्ता ऐसी;
काँप कैसी रही सत्तामयी सरकार है ?
'रसिक' समुन्नति के चिन्ह देख देख कर;
होता है प्रतीत, 'अनुकूल करतार है'।
'भारत अवश्य प्राप्त करेगा स्वराज्य अब',
उठता हृदय में यह भाव बार बार है॥

—:*:—

आवाहन

[१]

अरे ! इस नश्वर तन का मोह;
न तज सकते हो क्या तुम आज ?
बने हो श्वान, शशक के तुल्य;
बताओ तो क्यों हे मृगराज ?

[२]

मधुर मिष्टान्नों का क्या लोभ;
हो गया है तुमको इस बार ?
सहन करते हो जो अपमान;
न लेते लेशमात्र प्रतिकार ?

[३]

स्वर्ण की जंजीरों से प्रेम;
हुवा है क्या तुमको नादान ?
क्षणस्थायी किस सुख के हेतु;
पड़े हो बन्धन में बलवान ?

[४]

तुम्हीं देखो पिंज़ड़े में पड़ा;
न सहता क्या क्या दुख है कीर ?
कभी क्या वह सकता है भूल;
प्रकृति-विचरण, स्वाधीन समीर ?

[५]

अरे! क्या बतलाना है तुम्हें;
तुम्हारे मुक्त भाव निर्द्वन्द ?
तुम्हारा मतवालापन और;
तुम्हारा पहले का आनन्द ?

[६]

पुनः स्वच्छन्द सिंह के तुल्य;
झटक दो भुज-दंडों को वीर!
सहम जावेंगे शशक शृगाल;
टूट जावेगी दृढ़ जञ्जीर ॥

[७]

अखिल जग देखेगा साश्चर्य;
तुम्हारा साहस, शौर्य अखंड।
तुम्हारा तेज, ओज, गाम्भीर्य;
तुम्हारी विप्लव-शक्ति प्रचंड ॥

[८]

तुम्हारी दीन-दशा पर क्षुद्र, :—
जन्तु-गण जो करते उपहास।
तृप्त उनको कर देगी पूर्ण;
तुम्हारी आज़ादी की प्यास ॥

[९]

तुम्हारी दुर्दमनीय दहाड़
क्रान्ति की बरसावेगी धार ।
तुम्हारा गौरव-गर्जन घोर;
कँपा देगा सारा संसार ।।

[१०]

सिंह बन जाओ सच्चे सिंह;
न है अब नेक शयन का काल ।
तड़प कर यदि आँखें दो खोल;
क्यों न आवे भीषण भूचाल ?

[११]

तोड़ कर पराधीनता-पाश;
सजा दो स्वतन्त्रता का साज ।
'रसिक' निज बल, विक्रम से शीघ्र;
कहाओ फिर सच्चे मृगराज ।।

[१२]

छिपें गज-गण गह्वर में दौड़;
हिले वसुधा, दहले आकाश ।
सुवर्णाङ्कित पृष्ठों में अमर;
तुम्हारा हो जावे इतिहास ।।

सफलतास्वागत

सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ।
अनुनय, विनय, भक्ति, श्रद्धा, आकाँक्षा, दृग-जल, प्यार ॥
हिम गिरि को कन्दुक जाना, बाँधा वारिधि में सेतु ।
पर्वत को राई था माना, केवल तेरे हेतु ॥
कभी न भूलेंगे हम तेरा यह अनन्य उपकार ।
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥१॥

प्रेम, नेम, अनुराग, अलौकिक सुखमाओं के धाम ।
मंजुल पावन प्राण-पपीहे के प्यारे घनश्याम ॥
क्या दें तू ही कह दे तुझको हम नूतन उपहार ?
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥२॥

अभिमत आशा, अभिलाषाओं के उन्नत उत्थान ।
करते रहें यही इच्छा है. नित तव गुण-गण गान ॥
अवनति-अन्धकूप से हमको तू ने लिया उबार ।
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥३॥

तुझे देख हो गया हमारे; कष्टों का अवसान ।
तुझ पर मैं अर्पण करता हूँ जीवन, तन, मन, प्रान ॥
देवि ! कर दिया तू ने हमकों; सुखमय यह संसार ।
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥४॥

सोच रहे थे यत्न कि कैसे; भेजें कुछ सन्देश ?
जिससे आ कर दर्शन दे दें; हमें 'रसिक' राकेश ॥

बिषम वेदनायें सह तुझको पाया है इस बार।
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥ ५ ॥

तेरी मृदु मंजुल माया का; पा न सके न हम पार।
तू ही एकमात्र है जग में; जीवन को आधार ॥
रोम रोम पुलके, बजने लग गये हृदय के तार ॥
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥ ६ ॥

तुझे न अब हम जाने देंगे; किसी भाँति भी आज।
मन-मन्दिर में रख कर तुझको; साजेंगे सुख-साज ॥
करुणामयी ! बहा दे अपने करुणा रस की धार ॥
सफलते ! कर स्वागत स्वीकार ॥ ७ ॥

पराधीनता

तुम्हें अपना कर महान अपमान सहा;
और सहा जगतमें किसका न उपहास ?
आत्म-अभिमान भी गँवा दिया तुम्हारे लिये;
टूटा न 'रसिक' तिसपर भी तुम्हारा पाश ॥
तुम्हें थे मनाते, किन्तु तुम ठुकराती रहीं;
फिर भी हुवे न हम लोग थे कभी हताश।
किन्तु अब अति ऊब गया तुमसे है चित्त;
बोलो पराधीनते ! तुम्हारा कब होगा नाश ?

बन्देमातरम्

[१]

क्यों अस्त व्यस्त है देवि ! आज ?
यह कैसा है विकराल वेश ?
क्यों बरसाती तू अश्रु-धार ?
कह दे माँ ! क्या है तुझे क्लेश ?

[२]

ये छिन्न-भिन्न हैं पट कैसे ?
क्यों बिखर गये ये कान्त केश ?
क्या दुष्ट दैव ने दुःख दिया ?
माँ ! बतला दे तू त्याग त्वेष ?

[३]

ये घोर घाव तन में कैसे ?
क्या तुझे भाग्य ने दिया छोड़ ?
क्यों बिलख बिलख कर रही रुदन ?
माँ हम सब हैं तैंतिस करोड़ ?

[४]

रो पड़ें सभी मिल यदि अम्बे ?
तो अन्य सिन्धु बन कर तुरंत ।
बढ़ जाँय और जगतीतल का;
कर दें पल भर के मध्य अन्त ॥

[५]

हँस पड़ें सभी मिल यदि अम्बे !
कर कर निज भीषण अट्टहास ।
हिल जाय भूमि, गिर पड़े गगन;
हो जावे जग का सर्वनाश ॥

[६]

माँ ! आज्ञा दे दे तू केवल ?
फिर देख स्व सन्तति-वीर-कृत्य ।
सारा जग तव पद-पद्मों पर;
सर रख दे बन कर क्रीत भृत्य ॥

[७]

माँ ! स्वर्ग, नर्क, पाताल, भूमि;—
नभ कर दे क्षण में खंड खंड ।
सन्देह त्याग कर कमलों को;
पकड़ा दे निज कर्तव्य-दंड ॥

[८]

तोपों के बंद करें मुखड़े;
गिर पड़ें वायु के यंत्र हाल ।
जय-तिलक-युक्त कर दें उठ कर;
फिर से स्वजनों का भव्य भाल ॥

[९]

माँ! तेरे हित सागर उलंघ्य;
गिरि गण को कर दें चूर चूर।
कर विघ्न-गणों को पङ्गु, मूक;
हर लें उनका सारा ग़रूर॥

[१०]

यदि बज्र गिरावे इन्द्र स्वयं;
तो सुरपुर पर चढ़ जाँय आज।
कर स्वर्ग लोक को नष्ट भ्रष्ट;
अमरों का हर लें सौख्य साज॥

[११]

हो पूर्णतया ही तव विरुद्ध;
यदि भाग्य चले निज कुटिल चाल।
सौगन्द हमे है माँ! तेरी;
हम डसें उसे बन विषम ब्याल॥

[१२]

यदि जगन्नाथ जगदीश स्वयं;
तव ओर करें निज बक्र दृष्टि।
माँ! कम से कम तो एक बार;
हम कम्पित कर दें सकल सृष्टि॥

[१३]

जो आँख दिखावें माँ ! तुझको;
ले आँखें हम उनकी निकाल ।
यदि काल करे कुछ दम्भ, दर्प;
तो उसके भी बन जाँय काल ॥

(४१)

यह सब प्रताप है तब जननी !
तू कर दे ऐसा बर प्रदान ।
हम गुण गावें केवल तेरा;
तुझ पर करदें सर्वस्व दान ॥

वीर

[१]

दीनों सी बाणीं न किसी से भीं हैं कहते ।
नहीं दूसरों पर कदापि अवलम्बित रहते ॥
मातृभूमि-हित 'रसिक' विषम विपदायें सहते ।
वीर-भावनाओं की ही धारा में बहते ॥
वीर कभी होते नहीं; शरणागत तक़दीर के ।
रहते हैं विश्वास पर; वे अपनी तदबीर के ॥

[२]

समुत्साह से नित्य आन पर अड़ जाते हैं ।
स्वाधिकार के लिये सभी से लड़ जाते हैं ॥

निर्भयता से कर्म-मार्ग पर बढ़ जाते हैं।
'रसिक' राष्ट्र की बलि-वेदी पर चढ़ जाते हैं॥
सह लेते हैं मोद से; घाव तोप के, तीर के।
मूक लेखनी गा नहीं; सकती गायन बीर के॥

[३]

सानुराग उन्नति का पावन पाठ पढ़ाना।
जटिल जगत में नव जीवन की ज्योति जगाना॥
खोज खोज कर दीन गणों का दुःख मिटाना।
हँसते हँसते प्रिय स्वदेश पर मर मिट जाना॥
झोंके सह लेना सदा; विप्लव-पूर्ण समीर के।
डट जाना कर्तब्य पर; लक्षण हैं ये बीर के॥

उद्‌बोधन

नशा स्वाधिकारों का चढ़ा न तुम पर नेक;
ढालते हो जाने कैसे प्याले पर प्याले तुम ?
अब तक आँखें भी हुई हैं न तुम्हारी लाल;
पर कहते हो अपने को मतवाले तुम॥
देश का न लवलेश क्लेश हो मिटाते बीर !
किन्तु कहते हो अपने को बलवाले तुम।
'रसिक' तुम्हारा दिल उज्वल है, हुवा करे;—
गोरों द्वारा कहलाओगे सदैव काले तुम॥

स्वराज्य-स्वागत

आ मृत्यु-लोक में कल्प-लता अवतारी।
आ प्रिय स्वराज्य ! हम तुझ पर हैं बलिहारी ॥

[१]

तू है सुजनों के युगल दृगों का तारा।
तू ऋषियों के भी प्राणों का है प्यारा ॥
तू है सच्चे जीवन का एक सहारा।
है सर्वोन्नति का भार तुझी पर सारा ॥
तू ने जग है कर दिया सौम्य सुखकारी।
आ प्रिय स्वराज्य ! हम तुझ पर हैं बलिहारी ॥

[२]

तू ने कब मन को मोद न है पहुँचाया ?
तू ने कब दारुण दुःख न दूर हराया?
किससे कब तू ने प्यार नहीं दिलवाया ?
सचमुच तेरी है अमित अनोखी माया !!
आ मन-मन्दिर के एक प्रकांड पुजारी।
आ प्रिय स्वराज्य ! हम तुझ पर हैं बलिहारी ॥

[३]

तू ही मनुष्यता-लतिका है सरसाता।
है सुधा-धार बसुधा ही पर बरसाता ॥

तू है जगती में जीवन-ज्योति जगाता।
तू बीहड़ बन को भी सुरपुरी बनाता॥
फिर ध्यावें तुझ को क्यों न सभी तन धारी?
आ प्रिय स्वराज्य! हम तुझ पर हैं बलिहारी॥

[४]

आ स्वतंत्रता की मूर्ति! तुझे हम ध्यावें।
आ मन मोहन! हम तुझे हृदय से लावें॥
आ प्रियवर! आ हम तेरे गुण-गण गावें।
आ सुन्दर सुरभित सुमन-माल पहनावें॥
आ मन में भर दे नीति नवल औ न्यारी।
आ प्रिय स्वराज्य! हम तुझ पर हैं बलिहारी॥

[५]

आ मंजुलतामय मान, मधुरता-धारी।
आ मन मानस में भव्य भाव संचारी॥
आ शान्ति-सदन के अद्वितीय अधिकारी।
आ राष्ट्रीय नन्दन उपवन-फुलवारी॥
आ 'रसिक' मन्द मकरन्द चन्द छवि धारी।
आ प्रिय स्वराज्य! हम तुझ पर हैं बलिहारी॥

—:*:—

अन्धेर

[१]

जहाँ था लक्ष्मी-पति का वास,
वहाँ हैं झूठे भोग विलास।
जहाँ होता था हरि-गुण-गान,
वहाँ अब बसता है अभिमान॥
जहाँ था नय का ओर न छोर,
वहाँ रहते अब डाकू चोर।
जहाँ करते थे योगी योग,
वहाँ रहते अब लम्पट लोग॥
रहा पापी सुरपुर-पथ हेर,
सहन कैसे हो यह अन्धेर?

[२]

सदा जो माँग माँग कर भीख,
कुदिन का रहे पाठ थे सीख।
अहह! थे जो अवलम्ब-बिहीन,
विकल, निर्बल, निर्धन, छवि-छीन॥
स्वतन में भस्म-विभूति रमाय,
फिरा करते थे हा! असहाय॥
दृगों से बहा अश्रु की धार,
किया करते थे हाहाकार।
उन्हीं का रहा विश्व मुख हेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर?

[३]

कुटिल कायर थे जो विख्यात,
जिन्हें थी ज्ञात न रण की बात।
पड़े रह कर घर में दिन रात,
किया करते थे केवल बात॥
भरी थी जिनमें झूठी शान,
किन्तु थे जो अनभिज्ञ, अजान।
बिना समझे ही रिपु की चाल,
रहे जो व्यर्थ बजाते गाल॥
वही अब कहलाते हैं शेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर?

[४]

व्यथित रहती ज्यों भू पर मीन,
रहे जो त्यों ही दीन, मलीन।
अरे! जो थे कौड़ी के तीन,
वही हैं अब सुख-शिखरासीन॥
जलाता था जिनको दुख-दाह,
जगत था जिनको सिन्धु अथाह।
न है अब उन्हें किसी की चाह,
न है उनको कुछ भी परवाह॥
धरे हैं वे मणियों का ढेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर?

[५]

विदित थे जो जग में श्रीमान,
करोड़ों का देते थे दान।
भरा था जिनमें तेज महान,
न सह सकते थे जो अपमान ॥
सजा कर नित्य न्याय का साज,
त्याग देते थे तृण सा राज।
रहे जो भूपों के सरताज,
वहा हैं कौड़ी के मुँहताज ॥
रहे हैं वही भूख से टेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर ?

[६]

किया करते थे जो व्यवसाय,
वही हा! अब करते हैं न्याय।
रहे जो स्वर्णाङ्कित स्वच्छन्द,
वही अब सहते हैं दुख-द्वन्द ॥
रहे जो कहलाते अवनीश,
वही हैं हाय! झुकाये शीश।
समझते थे जिनको सब हेय,
उन्हीं ने पाया है सुख-श्रेय।
वही जग को करते हैं ज़ेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर ?

[७]

किया जिनने श्रम-सीमा पार,
ध्येय ही था जिनका आधार ?
निरख कर जिनके हृदयोद्गार,
चकित, विस्मित था यह संसार ।।
न जिनने सही फूल की चोट,
उन्हीं का रहे गला सब घोट ।।
विकल हो शीश भूमि पर नाय,
अरे ! वे करते रोदन हाय !
मिटाते क्षुधा बीन वे बेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर ?

[८]

दुखी जनता के प्राणाधार,
आज सहते हैं क्लेश अपार ।
जन्म भू के जो हैं हिय-हार,
वही सेते हैं कारागार ।।
रहा जिनका वीरों का वेश,
वही सहते हैं दारुण क्लेश ।
शान्ति का जो सजते थे साज,
हुवे वे विप्लव के अधिराज ।।
लिये हैं भीरु लोग शमशेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर ?

[६]

जहाँ नाचा करते थे मोर,
वहीं करते हैं गीदड़ शोर।
जहाँ शोभित थे राजोद्यान,
वहीं पर हैं वीभत्स स्मशान।
जहाँ थे सुर-दुर्लभ सुख-भोग,
वहीं है पाप, ताप, छल, रोग॥
जहाँ की सुनकर करुण-पुकार,
दयामय लेते थे अवतार।
न आते अब होती अति देर,
सहन कैसे हो यह अंधेर?

[१०]

हुवे स्वामी हैं सेवक आज,
किन्तु सेवक गण करते राज।
दुखी हो विलख रहे विद्वान,
मगर मूर्खों का है सम्मान॥
देश के हैं सुपूत निरुपाय,
देख कर कष्टों का समुदाय।
मुक्त है शशक, शृगाल-समाज,
पड़े हैं बन्धन में मृगराज॥
निरख वे रहे दिनों का फेर,
सहन कैसे हो यह अंधेर?

—:※:—

आकाश-बाणी

दमन-निशाचरी की द्युति नष्ट भ्रष्ट होगी;
विश्वनाथ-मन्दिर से बम बमकेहीगा ।
आत्मिक बल का प्रबल अभ्युत्थान होगा;
देश-प्रेमियों का उत्साह दमकेहीगा ॥
दीनता, मलीनता, दरिद्रता मिटेगी शीघ्र;
स्वाधिकार-पाटल-प्रसून गमकेहीगा ।
'रसिक' रुचिर राजनीति-नभ- मंडल में;
भारत के भाग्य का सितारा चमकेहीगा ॥

बलिहारी है

जान बूझ के भी कहो मान क्यों हो साधे हुवे ?
इससे विदित होती भीरुता तुम्हारी है ।
आँख रखते हुवे भी आँख खोलते हो नहीं;
'रसिक' तुम्हारी रीति जगत से न्यारी है ॥
कान रखते हुए भी सुनते पुकार नहीं;
देख कर ऐसी दशा दुःख होता भारी है ।
पैर रखते हुवे भी दौड़ पड़ते हो क्यों न ?
हाय रे ! तुम्हारे करुणा की बलिहारी है ॥

अछूत

कोई कहता है "हैं अछूत नहीं छूने योग्य,
शशि-अङ्क के कलङ्क-कालिमा-किनारे हैं'।
कोई कहता है 'अपने ही पूर्व पापों-द्वारा;
'रसिक' रमेश से भी गये ये बिसारे हैं'॥
कोई कहता है 'तन करते अपावन ये;
पावस के बड़े गन्दे जल के पनारे हैं'।
किन्तु कहने में लज्जा लेश भी न होती हमें,
'हम अन्त्यजों के और अन्त्यज हमारे हैं'।

अँधेरा

अपने महल्ले में कहाते बड़े दानी तुम;
सारा गाँव बना बिना दाम तव चेरा है
नाम से तुम्हारे सैकड़ों का कारबार होता;
लगता ग़रीबों का तुम्हारे घर फेरा है॥
देश पर कुछ बलिदान तुमने न किया,
लुब्ध हुआ 'रसिक' ये देख मन मेरा है।
अनायास मुख से निकल पड़ते हैं बैन,
ज्योति अंधकार में है, ज्योति में अँधेरा है॥

बीर के

[१]

लेश न क्लेश मिटाते हो देश के,
काम न आते हो दीन, अधीर के।
फ़ैशन के फँसे चङ्गुल में,
औ ग़ुलाम बने हो अपाहिज कीर के॥
देते दुहाई हो पूर्वजों की,
सकते हो नहीं सह झोंके समीर के।
व्यर्थ में बीर बने हो सखे!
जब काम नहीं करते कुछ बीर के॥

[२]

नित नूतन नीति निकालते हैं,
कभी पीटते हैं नहीं लीक लकीर के।
जनता के हृदय में विराजते हैं;
प्रिय होते समान हैं दीन, अमीर के॥
करते जगदीश की प्रार्थना हैं;
गुण-गायक होते न पीर फ़कीर के।
निज काम से नाम कमाते हैं वे;
कुछ सींग औ पूँछ न होती है बीर के॥

सुख

[१]

निरुद्देश्य हो मौज उड़ाना, खाना, पीना मनमाना,
किम्बा उद्यानों में जा कर गौरव के गायन गाना।
अथवा सुरभित रम्य पवन से हृदय-सुमन का सरसाना,
या रजनी में रजनी-पति की छवि से प्रिय प्रतिभा पाना॥

[२]

टहल टहल कर चहल पहल में ही निज मन को बहलाना,
या अपने अनुभव की बातें जाकर जग को बतलाना।
या नेता बन ध्येय धर्म का मर्म सबों को सिखलाना,
या कल्पित कविता-तरङ्ग में ही अनङ्ग सा इठलाना॥

[३]

किम्बा मित्रों के सँग जाकर मुद से कहीं भ्रमण करना,
साभिमान नैसर्गिक छवि का धवल ध्यान मन में धरना।
धीमानों का दृढ़ विचार है निश्चयपूर्वक बतलाता,
भर लेना निज पेट कभी भी नहीं सौख्य है कहलाता॥

[४]

खोज खोज कर श्रमपूर्वक जा कर दुखियों का दुख हरना,
प्रिय स्वदेश ही के हित जीना, प्रिय स्वदेश के हित मरना।
मातृ-भूमि की बलि-बेदी पर सानुराग बलि चढ़ जाना,
मैंने अपने कवि-जीवन में है इसको ही सुख माना॥

निचोड़ दे

पापियों के लिये ज्वालामुखी बन कर मातु !
अत्याचारियों का पाप-पूर्ण घट फोड़ दे।
प्रलय का विकराल दृश्य दिखला दे देवि !
शत्रुओं के शस्त्र वाले हाथ को मिरोड़ दे॥
आत्म-बलिदान के 'रसिक' बलशाली भाव;
भारत-निवासियों के मानस म छोड़ दे।
तोड़ दे कपट-जाल, मोड़ दे दया की दृष्टि;
जोड़ दे विदीर्ण दिल, दीनता निचोड़ दे॥

करुणा-निधान

दीन-बंधु ! विरद तुम्हारा किस काम का है;
दीनों की पुकार से जो बने तुम दीन हो ?
देखो तो अनाथ-नाथ ! कितने अनाथ आज,
फिरते हैं अन्न वस्त्र तक से विहीन हो ?
पत्थर को निज दीनता से पिघलाते हैं वे;
झींखते हैं जब भूख प्यास से मलीन हो।
मत कहलाओ तुम 'करुणा-निधान' यदि,
आँख न तुम्हारी करुणा से ग़मगीन हो॥

—:*:—

प्रोत्साहन

[१]

प्राप्त कर लोगे स्वच्छन्दता जो बीर गण !
स्वर्ग से अमर वृन्द पुष्प बरसावेंगे ।
भ्रमर से भ्रमेंगे 'रसिक' से सुकवि जन,
सुन्दर सुछन्दों में सुयश तव गावेंगे ॥
भागेंगे कुटिल, क्रूर, लम्पट, लबार, या तो;—
हो कर शरणागत शरण में आवेंगे ।
बीरता, गम्भीरता औ धीरता तुम्हारी सखे !
कायर, कुचाली देखते ही रह जावेंगे ॥

[२]

अट्टहास कर दौड़ पड़ो यदि बीरो ! तव,
लाल मुख देख कर शत्रु-मुख काला हो ।
अस्तित्व मिट जाय देश से विदेशियों का;
पद में तुम्हारे षर एक भी न छाला हो ॥
एक हाथ में हो चरखे का अनिवार्य अस्त्र;
दूसरे में खादी का 'रसिक' भव्य भाला हो ।
हील उठे धरणीं, प्रशान्त ज्वालामुखी भी हो;
सकल जगत में तुम्हारा बोल बाला हो ॥

श्रद्धाञ्जलि

[१]

उपकारों की इष्टि कहें या मर्यादा का मान तुम्हें ?
आत्मिक बल की ध्वजा कहें या भूरि भाव का भान तुम्हें
नक्षत्रों में चन्द्र कहें या स्वतंत्रता-सोपान तुम्हें ?
मुक्ति-मार्ग का पथिक कहें या गुण गरिमा का गान तुम्हें ?

[२]

मंजुलता की मूर्ति कहें या कोमलता की खान तुम्हें ?
प्रबल प्रेम का पुंज कहें या घन में विद्यु महान तुम्हें ?
आनन्दों का ओज कहें या बिधि का विषम बिधान तुम्हें ?
बीरों में आदर्श कहें या कृषकों का अभिमान तुम्हें ?

[३]

सुकृतियों की कला कहें या स्वत्वों का उपमान तुम्हें ?
जग की जीवन ज्योति कहें या सत्याग्रह की आन तुम्हें ?
पुष्पों का मकरन्द कहें या अलि बृन्दों की तान तुम्हें ?
बसुधातल की सुधा कहें या अटल आत्म बलिदान तुम्हें ?

[४]

सत्य-व्रत का व्रती कहें या प्रभुतापन का प्रान तुम्हें ?
क्षिति की छविमय छटा कहें या सुख-नन्दन उद्यान तुम्हें ?
कान्ति-कुञ्ज कौमुदी कहें या उपनिषदों का ज्ञान तुम्हें ?
महिमा का मार्तण्ड कहें या धवल धैर्य का ध्यान तुम्हें ?

[५]

साम्यवाद-सिद्धान्त कहें या असहयोग-अनुपान तुम्हें ?
राष्ट्रीय झनकार कहें या जगदीश्वर का दान तुम्हें ?
सदाचार का तत्व कहें या कुंचित केन्द्रोत्थान तुम्हें ?
धनियों का सर्वस्व कहें या दीनों का अरमान तुम्हें ?

[६]

दिव्य दया की मूर्ति कहें या सुखद शान्ति की शान तुम्हें ?
स्वाधिकार-आधार कहें या प्रिय स्वराज्य-सन्तान तुम्हें ?
मोहनदास कर्मचँद जी ! क्या कहें कहो इस आन तुम्हें ?
जी में आता है कह दें हम भारत का भगवान तुम्हें ?

पशु बल का उन्माद

[१]

अम्बे ! किस दुख के कारण है बिखराया तूने निज केश ?
कृपामयी ! क्यों धरा आज है, तू ने रण-चंडी का वेश ?
किस पत्थर के पिघलाने को, गाती है तू करुण-विहाग ?
तेरे दीर्घ दयालु दृगों में, जलती है यह कैसी आग ?

[२]

तेरा अट्टहास मृतकों में क्यों न करे जीवन संचार ?
तेरे क्रान्ति-गान से आवें क्यों न हृदय में भाव अपार ?
मादकता क्यों झलक रही है तेरे अङ्गों में भरपूर ?
तेरे मंजुल मस्तक पर है सज्जित क्यों यह रण-सिन्दूर ?

[३]

पहिन लिया है माँ ! क्यो तू ने; यह नर-मुंडों की माला ?
तेरे रोम रोम में जलती सी है किस बिष की ज्वाला ?
देख रहा जननी ! मैं तुझमें; प्रलय-काल का सा उत्ताप ?
किसके प्रति है निकल रहा; तेरे सात्विक मुख से अभिशाप ?

[४]

तेरे क्षत विक्षत तन मे है; किस दीवाने का उन्माद ?
तेरे आवाहन में मिश्रित है किसका यह भैरव-नाद ?
तेरे भावों में आवेष्टित है किस सागर का तूफ़ान ?
समाकीर्ण है तेरी वेदी पर किस पागल का बलिदान ?

[५]

समझ गया-क्यों-आज सजाया; तू ने रण-दुर्गा का साज ?
बन्दीगृह में हाय ! पड़ा है; भारत का सच्चा सरताज ॥
काल चक्र ! तेरे प्रभाव से; है उसका क़ैदी का ठाट ।
तेंतिस कोटि भारतीयों के; जो है मानस का सम्राट ॥

[६]

अब न रुकेगी पूर्व दिशा में; बिप्लव की भीषण आँधी ।
उथल पुथल शाशन-विधान को; कर देगा क़ैदी गाँधी
जकड़ा जा न सकेगा जंजीरों में; जनता का उत्साह ।
दीवालों में दब न सकेंगी दीन गणों के दिल की दाह ॥

[७]

विश्व-पूज्य गाँधी के नश्वर तन को कर पिंजड़े में बन्द ।
बधिक ! मिटा सकता न कभी तू, उनके भव्य भाव स्वच्छन्द ॥
आत्मिक बल के सम्मुख तुझको, निश्चय झुकना ही होगा ॥
रे जल्लाद ! दमन के पथ पर, तुझको रुकना ही होगा ॥

[८]

तन, मन, धन, जीवन की चाहे जितना कर तू बरबादी ।
प्राण गँवा कर भी लेना है, हमको अपनी आज़ादी ॥
बन्दूकों से बन्द न होगा, स्वतंत्रता का निश्चल नाद ।
मिटा सकेगा सत्याग्रह के भाव न पशु-बल का उन्माद ॥

कामना

दमन गगन में तमारि से बिहार करें;
राष्ट्र-रुचि-रस से हृदय को पगा दें फिर ।
दलबन्दियों का दीर्घ दलदल दल कर,
मनोवृत्ति मातृभूमि सेवा में लगा दें फिर ॥
भीति की विषम भ्रम-भावना भगा दें शीघ्र,
'रसिक' विराट वैमनस्य विलगा दें फिर ।
'ख़ून के ये छींटे' बरसा दें ख़ून ही की धार,
शान्त चित्त में भी अग्निज्वाल सुलगा दें फिर ॥

Printed by
Ram Adhar Yadava,
at the Union Job Pres
Allahabad.